ISSN: 3107-7560

Kalasopan

"Arts Evoke the Mystery"

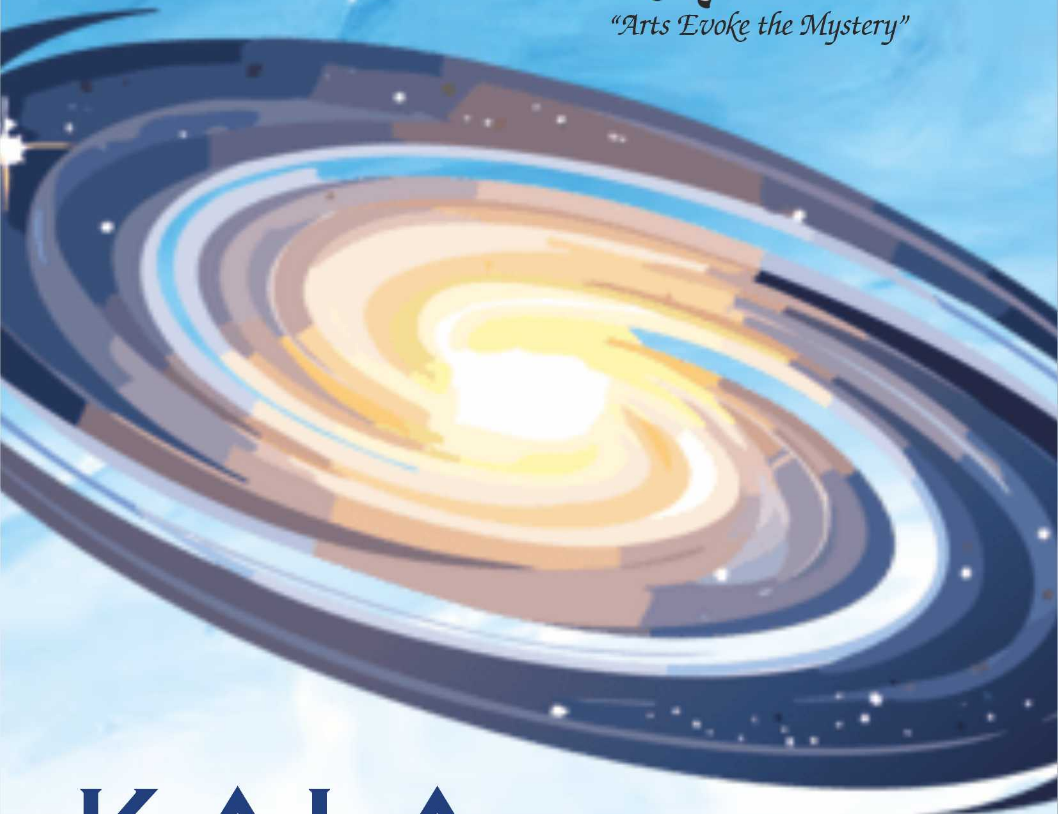

KALA SOPAN

MULTI DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

Volume - 02, No. 2
April-June 2025

A Peer- Reviewed Bilingual Quarterly Research Journal
Year - 01, Issue - 02

KalaSopan

Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal

Volume – 02 No. 02
April to June 2025
A Peer- Reviewed Bilingual Quarterly Research Journal
Year – 01, Issue - 02
ISSN : 3107-7560

Advisory Board

1. Dr. Avadhesh Mishra, Associate Professor, DSMNRU, Lucknow, UP
2. Dr. Uttma Dixit, Head, Department of Painting, Faculty of VisualBHU, Varanasi, UP
3. Dr. Mahaveer Singh, Ex Director, All India Radio, Bhopal, MP
4. Prof. Munna Tiwari, Dean, Faculty of Arts, Bundelkhand University, Jhansi, UP
5. Dr. Prashant Mishra, BJR Institute of Law, Bundelkhand University, Jhansi, UP
6. Dr. Yatendra Mishra, Associate Professor, Dr. B. R. Ambedkar Institute of Social Sciences (Department of Social Work), Bundelkhand University Jhansi Uttar Pradesh
7. Dr. Neeta Yadav, Associate Professor, Department of History, Siddharth University, Kapilvastu, Siddharth Nagar, Uttar Pradesh
8. Prof. Jitendra Tiwari, Department of Sociology, Bundelkhand Degree College, Jhansi, Uttar Pradesh

Editor
Dr. Shweta Pandey
Assistant Professor, Institute of Fine Arts,
Bundelkhand University Jhansi Uttar Pradesh
drshwetapandey@bujhansi.ac.in, shwetapandeygkp@gmail.com

Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal

Joint Editor
Dr. Umesh Kumar
Associate Professor, Department of Mass Communication and New Media,
Central University of Jammu, Jammu and Kashmir
umesh.mcnm@cujammu.ac.in, umesh.or.kumar@gmail.com

Editorial Board
Dr. Anupam Pandey
Senior Assistant Professor, Department of Commerce,
Sikkim Manipal University, Sikkim
anupamsarnath@gmail.com, anupam.pandey@smudoe.edu.in

Dr. Gaurav Ranjan
Assistant Professor, Department of Journalism & Mass Communication,
Central University of Odisha, Sunabeda,
NAD Post Office, Koraput – 763004, Odisha, India
granjan@cuo.ac.in

Dr. Anjani Kumar Jha
Associate Professor & Head,
Department of Media Studies School of Computational Sciences,
Information and Communication Technology,
Mahatma Gandhi Central University, Dr. Ambedkar Administrative Building,
Near OP Thana, Raghunathpur, Motihari, District- East Champaran,
Bihar- 845401 (INDIA)
anjanikumarjha@mgcub.ac.in
https://www.mgcub.ac.in/academics/faculty/49

Prof. Paramveer Singh
Professor, Department of Mass Communication and New Media,
Central University of Jammu, Rahya-Suchani (Bagla), District Samba, Jammu,
Jammu & Kashmir- 181143, India
paramveer.mcnm@cujammu.ac.in

Dr. Ratnesh Yadav
Associate Professor, Department of Hindi and Other Indian Languages,
Central University of Jammu, Rahya-Suchani (Bagla),
District Samba, Jammu, Jammu & Kashmir- 181143, India
ratnesh.hnd@cujammu.ac.in

Subscription
Single Copy: Rs. 500/-
Annual: Rs. 1500/-
Institutional Membership: Rs.2000 (Annual)
Please remit your subscription through draft in favour of kala sopan.

Cover Design : Shivay Design Maker, Jhansi, UP
Publisher: Kala Sopan

Chief Editor- Dr. Shweta Pandey, Publisher- Kala Sopan and printed at M/S Print Labs, Jeevan Shah Tiraha, Jhansi, Uttar Pradesh

About us

Starting Year of Publication 2025

Subject : Bilingual (Hindi & English)

Frequency : Quarterly

Aim And Objectives of Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal Aim of Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal. The aim of the Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal (KSMRJ) is to be a leading source of scholarly articles and research papers through the promotion of research publication at affordable or at no cost in long run. In another word to make research publication hassle free for financially constrained researchers and scholars. The published article will always be open access, free under Creative Commons License and archived for future generations.

Objectives of Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal

1. To provide publishing platform to researchers and scholars from different field.
2. To give scholars a chance to be part of the scholars community ho assists and helps others in publication and review.
3. To make research papers and scholarly articles available.
4. To create avenues for promotion and publication of research papers about and from social, economically and culturally weakened sections of the society across the world.
5. To make research publication hassle free to ensure sharing of knowledge in due time. Scope of Publication Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal is a Multi Disciplinary journal and hence wide scope of publication.

Original research articles, reviews and short communication in all areas of Science, Social Science, Engineering and Management are most welcome in for publication in the Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal.

Authors are encouraged to submit complete unpublished and original works, which are not under review in any other journals. The scopes of the journal include, but not limited to, the following topic areas: science & technology, social studies, planning and development, English language and literature.

Title	Kala Sopan Multi Disciplinary Research Journal
Frequency	Quarterly
ISSN	ISSN: 3107-7560
Publisher	Kala Sopan (A NGO Registered in Jhansi, Uttar Pradesh)
Chief Editor	Dr. Shweta Pandey
Copyright	Kala Sopan
Starting Year	2025
Subject	Multi Disciplinary Subjects
Language	Bilingual (Hindi & English)
Publication Format	Print
Email ID	kalasopan@gmail.com
Mobile No.	9935032832
Address	38 C, Nizampur, Badri Kushwaha ki Gali, Gorakhpur 273005 Uttar Pradesh

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विवरण	पेज नं.
1.	भारतीय पारंपरिक आदिवासी कला, संस्कृति एवं उनका विकास — प्रवेश चन्द्र वर्मा, डॉ. फरहा दीबा	07—12
2.	साँची तथा भरहुत की बौद्ध कला में प्रतीकों का महत्व — डॉ. अंकिता शर्मा	13—21
3.	लोक जीवन और उसमें जीवंत होती कला — डॉ. रानी शर्मा	22—24
4.	भूपेन खक्खर के प्रमुख चित्रों में मानवीय संवेदना का वर्णन — गजेन्द्र सिंह, डॉ. श्वेता पाण्डेय	25—33
5.	बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव — काजल	34—39
6.	हिन्दू धर्म की प्रकृति और उसकी प्रजातांत्रिक व पर्यावरणीय स्वरूप — डॉ. राजेश कुमार	40—47
7.	**Clay, Culture and Creativity Tracing the Context and Evolution of Neolithic and Pre-Harappan Terracotta at Mehrgarh** - Mr. Hardik Chavda	48—57
8.	**Scrolling Minds : Understanding the Mental Health Consequences of Social Media Among College Youth** - Gauri Pandey	58—64

सम्पादकीय

शोध पत्रिका 'कला सोपान मल्टी डिस्प्लीनरी रिसर्च जर्नल' का द्वितीय अंक प्रकाशित करते हुए हमें यह विश्वास व्यक्त करने में प्रसन्नता है कि यह अंक भारतीय कला, संस्कृति और साहित्य के अध्ययन में एक सार्थक अकादमिक हस्तक्षेप के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित होगा। प्रथम अंक को विद्वत समाज से प्राप्त सकारात्मक प्रतिक्रिया ने इस पत्रिका की वैचारिक दिशा, शोध–उद्देश्य और अकादमिक प्रतिबद्धता को और अधिक स्पष्ट किया है।

'कला सोपान मल्टी डिस्प्लीनरी रिसर्च जर्नल' का मूल उद्देश्य कला को केवल सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक बहुआयामी सामाजिक सांस्कृतिक पाठ के रूप में प्रस्तुत करना है। भारतीय कला परंपरा अपने भीतर ऐतिहासिक निरंतरता, दार्शनिक आधार और सामाजिक यथार्थ को समाहित किए हुए है। इस द्वितीय अंक में संकलित शोध आलेख कला के इन्हीं आयामों का आलोचनात्मक, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। आलेखों में अनुसंधान पद्धति, संदर्भ–साहित्य और तर्कात्मक प्रस्तुति पर विशेष ध्यान दिया गया है, जो इन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा निर्धारित शोध मानकों के अनुरूप स्थापित करता है।

वर्तमान अकादमिक परिदृश्य में अंतर्विषयी अध्ययन की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है। कला, साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र और दर्शन के अंतर्संबंधों को समझे बिना कला–अध्ययन अधूरा रह जाता है। 'कला सोपान मल्टी डिस्प्लीनरी रिसर्च जर्नल' का यह अंक इस अंतर्विषयी दृष्टिकोण को सुदृढ़ करता है, जहाँ कला को सामाजिक संरचना, लोक जीवन और समकालीन संदर्भों के साथ जोड़ा गया है। विशेष रूप से लोककला और शास्त्रीय कला के पारस्परिक संबंध, परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व तथा वैश्वीकरण के प्रभाव जैसे विषय इस अंक को शोध की दृष्टि से प्रासंगिक बनाते हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानकों के अनुरूप शोध प्रकाशन में

मौलिकता, प्रामाणिक स्रोतों का उपयोग, स्पष्ट अनुसंधान–उद्देश्य और निष्कर्षों की तार्किक प्रस्तुति अनिवार्य मानी जाती है। इस अंक के लेखकों ने इन मानकों को ध्यान में रखते हुए अपने शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। पत्रिका की संपादकीय प्रक्रिया में भी समीक्षात्मक मूल्यांकन, भाषा–शुद्धता और संदर्भ–संरचना पर विशेष बल दिया गया है, जिससे पत्रिका की अकादमिक विश्वसनीयता सुनिश्चित हो सके।

यह पत्रिका शोधार्थियों, अध्येताओं और शिक्षकों के लिए न केवल अध्ययन–सामग्री उपलब्ध कराती है, बल्कि उन्हें कला–विमर्श के नए आयामों पर विचार करने के लिए प्रेरित भी करती है। कला के माध्यम से समाज और संस्कृति को समझने की यह प्रक्रिया अकादमिक शोध को अधिक व्यापक और सार्थक बनाती है।

अंततः, हम आशा करते हैं कि 'कला सोपान मल्टी डिस्प्लीनरी रिसर्च जर्नल' का द्वितीय अंक विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और शोध संस्थानों में कला अध्ययन से जुड़े विद्यार्थियों एवं विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। सभी लेखकों, समीक्षकों और सहयोगियों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह अंक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुरूप, शोधपरक और वैचारिक रूप से समृद्ध बन सका है।

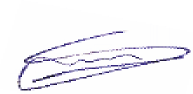

डॉ. श्वेता पाण्डेय
संपादक एवं अध्यक्ष कला सोपान

"भारतीय पारंपरिक आदिवासी कला, संस्कृति एवं उनका विकास"

प्रवेश चन्द्र वर्मा
शोधार्थी, कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय
डॉ फरहा दीबा
एसोसिएट प्रोफेसर, कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

सारांश

भारतीय आदिवासी कला और संस्कृति एक अनूठी और समृद्ध धरोहर है, जो भारतीय समाज की विविधता और सांस्कृतिक आयामों को व्यक्त करती है। इस अध्ययन का उद्देश्य आदिवासी कला और संस्कृति की विशेषताओं, उनके इतिहास, वर्तमान स्थिति, और संरक्षण प्रयासों को समझना है। आदिवासी कला के प्रमुख रूपों में चित्रकला, मूर्तिकला, शिल्पकला, वस्त्र कला, हस्तशिल्प, लोकनृत्य और लोकगान शामिल हैं, जो इन समुदायों की सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक विश्वासों, और सामाजिक जीवन को दर्शाते हैं।

इस शोध में विभिन्न आदिवासी कला रूपों, जैसे वारली, गोंड, पिथोरा आदि का विश्लेषण किया गया है, और साथ ही वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभावों का भी मूल्यांकन किया गया है। अध्ययन में यह पाया गया कि आदिवासी कला अब वैश्विक बाजारों में एक नई पहचान प्राप्त कर रही है, लेकिन साथ ही इस पर बाजारवाद और आधुनिकता के कारण पारंपरिक तत्वों का संकट भी उत्पन्न हो रहा है।

इस अध्ययन के तहत क्षेत्रीय अध्ययन, साक्षात्कार, और दस्तावेजों के विश्लेषण के माध्यम से आदिवासी कला के विभिन्न पहलुओं का गहन विश्लेषण किया गया। इसके अतिरिक्त, आदिवासी कला के संरक्षण और संवर्धन के लिए सरकारी योजनाओं, जैसे TRIFED (Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India) और GI Tag Geographical Indication के प्रयासों का भी अध्ययन किया गया है।

अंततः, इस शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आदिवासी कला और संस्कृति का संरक्षण केवल पारंपरिक कला रूपों को बचाने के लिए नहीं, बल्कि इन समुदायों की सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने के लिए भी आवश्यक है। इस दिशा में सतत विकास और आदिवासी समुदायों के सशक्तिकरण के प्रयासों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : आदिवासी कला, संस्कृति, चित्रकला, शिल्पकला, वैश्वीकरण, संरक्षण, TRIFED] GI Tag.

परिचय

भारत विविध सांस्कृतिक विरासत का देश है, जहाँ विभिन्न समुदायों की कला, परंपराएँ, और जीवनशैली अद्वितीय एवं समृद्ध हैं। भारतीय आदिवासी समुदाय सदियों से अपनी विशिष्ट कलात्मक अभिव्यक्तियों और सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से अपनी पहचान बनाए हुए हैं। इनकी कला और संस्कृति न केवल उनकी जीवनशैली का प्रतिबिंब है, बल्कि यह उनकी धार्मिक आस्थाओं, लोककथाओं और प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जुड़ी हुई है।

आदिवासी कला विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, जैसे दृ चित्रकला, मूर्तिकला, वस्त्र कला, लोक संगीत, नृत्य और हस्तशिल्प। इनमें गोंड, वारली, पिथौरा, सोहराई और मधुबनी चित्रकला जैसी पारंपरिक शैलियाँ प्रमुख हैं, जो अद्वितीय रंग संयोजन और प्रतीकात्मकता से परिपूर्ण होती हैं। इसी प्रकार, उनके लोकनृत्य और संगीत उनकी सांस्कृतिक धरोहर को अभिव्यक्त करने के सशक्त माध्यम हैं।

हालांकि, आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव से आदिवासी कला और संस्कृति कई चुनौतियों का सामना कर रही है। पारंपरिक कलाओं की पहचान धीरे–धीरे धूमिल हो रही है और नई पीढ़ी इनसे दूर होती जा रही है। इसके बावजूद, सरकारी प्रयासों, गैर–सरकारी संगठनों (NGOs) और सांस्कृतिक उत्सवों के माध्यम से इन कलाओं के संरक्षण और संवर्धन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं।

इस शोध–पत्र में भारतीय आदिवासी कलात्मक एवं सांस्कृतिक परंपराओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा, साथ ही यह भी विश्लेषण किया जाएगा कि इनके संरक्षण और विकास की दिशा में क्या प्रयास किए जा सकते हैं।

अनुसंधान पद्धति : आदिवासी कला और संस्कृति पर किए गए इस अध्ययन में, विभिन्न शोध विधियों और दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया है, ताकि आदिवासी कला, उनके सांस्कृतिक परंपराओं, संरक्षण के प्रयासों, और वैश्वीकरण तथा आधुनिकीकरण के प्रभावों को व्यापक रूप से समझा जा सके। इस अध्ययन के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की प्राथमिक और द्वितीयक डेटा एकत्रित की गई हैं, जिनके माध्यम से आदिवासी कला और संस्कृति की गहराई से जांच की गई है। इस प्रक्रिया को विस्तार से समझने के लिए निम्नलिखित विधियाँ

अपनाई गई हैं :

- अध्ययन (Field Study)
- समूह चर्चा (Focus Group Discussions)
- साहित्यिक और शैक्षिक संसाधन (Literary and Academic Resources)
- डिजिटल स्रोत (Digital Sources)
- सांस्कृतिक अध्ययन दृष्टिकोण (Cultural Study Approach)
- नीति विश्लेषण (Policy Analysis)

उद्देश्य

इस अध्ययन/सेमिनार का उद्देश्य भारतीय आदिवासी समुदायों की पारंपरिक कला, सांस्कृतिक परंपराओं एवं जीवनशैली को समझना, उनका दस्तावेजीकरण करना और उनके समक्ष आ रही समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण करना है। साथ ही यह भी उद्देश्य है कि इन सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण, संवर्धन एवं सतत विकास के संभावित मार्गों की पहचान की जाए। इस सेमिनार के माध्यम से प्रतिभागियों में आदिवासी समाज की विविधता, सौंदर्यबोध और सामाजिक–सांस्कृतिक योगदान के प्रति जागरूकता और सम्मान की भावना उत्पन्न करना प्रमुख लक्ष्य है।

चर्चाः भारत की सांस्कृतिक विविधता को समझने के लिए भारतीय आदिवासी समुदायों का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। भारत में लगभग 8.6: जनसंख्या आदिवासी (जनजातीय) समुदायों की है, जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए हैं कृ जैसे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, असम, नागालैंड, मिजोरम, और अन्य पूर्वोत्तर राज्य।

इन समुदायों की अपनी विशिष्ट जीवनशैली, परंपराएं, धार्मिक विश्वास, कला, साहित्य और भाषा होती है। इनका जीवन प्रकृति, श्रम, लोकमान्यता और सहजीवन की अवधारणा पर आधारित होता है। आधुनिकता और वैश्वीकरण के इस युग में यह चर्चा अत्यंत प्रासंगिक है कि हम किस प्रकार आदिवासी कलाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों को समझें, संरक्षित करें और उन्हें वर्तमान विकास प्रक्रियाओं में सम्मिलित करें।

परिणाम एवं निष्कर्ष : इस शोध में विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया, जो आदिवासी कला, संस्कृति, और उनके विकास से संबंधित हैं। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि आदिवासी समुदायों की कला और संस्कृति न केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे आज के समकालीन समाज के

लिए भी प्रासंगिक हैं। निम्नलिखित परिणाम इस शोध में सामने आए हैं :

1. आदिवासी कला और संस्कृति की समृद्ध विविधता

पारंपरिक कला रूपों की मौलिकता :

भारतीय आदिवासी कला अत्यंत विविध और सामुदायिक पहचान से जुड़ी हुई है। विभिन्न आदिवासी समूहों जैसे गोंड, वारली, भील, संथाल, पट्टचित्र, कोहबर, और मधुबनी की कला में प्रकृति, जीवन और धर्म के प्रतीकों का गहरा संबंध पाया गया है। यह कला न केवल सौंदर्यबोध का हिस्सा है, बल्कि जीवन के गहरे सत्य और सामाजिक संरचनाओं को व्यक्त करती है।

- गोंड कला की बारीक बिंदियों और रेखाओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों को चित्रित किया जाता है।
- वारली कला में परंपरागत रूप से मानवता, मनुष्य और प्रकृति के बीच रिश्ते को दर्शाया जाता है।
- मधुबनी कला में धार्मिक और सामाजिक संरचनाओं का प्रतीकात्मक चित्रण किया गया है।

2. आदिवासी जीवनदर्शन और सामूहिकता

प्राकृतिक संतुलन और जीवनदर्शन :

आदिवासी समुदायों का जीवन दर्शन पूरी तरह से प्रकृति और पर्यावरण से जुड़ा हुआ है। उनके पर्व, उत्सव और कला सभी के मूल में प्रकृति की पूजा और संरक्षण का भाव निहित है। आदिवासी कला की प्रकृति ही इस विचारधारा को प्रस्तुत करती है कि मानव और प्रकृति का रिश्ता किसी अन्य जीव से अलग और विशिष्ट होता है।

- सार्वजनिक जीवन और सामूहिकता को प्राथमिकता दी जाती है, जिसमें समुदाय के प्रत्येक सदस्य का योगदान महत्वपूर्ण होता है।

3. वैश्वीकरण और आधुनिकता का प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव :

आदिवासी कला को वैश्विक बाजारों तक पहुँचाने में डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और कला मेलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन मंचों ने आदिवासी कला को एक नया पहचान और बाजार दिया है।

- TRIFED और अन्य सरकारी योजनाओं ने आदिवासी कला को देश और विदेश में प्रमोट करने के अवसर दिए हैं।

नकारात्मक प्रभाव : हालांकि, पारंपरिक कलाओं की मौलिकता में वैश्वीकरण ने

कई बार हानि भी पहुँचाई है। बड़े बाजारों में मांग पूरी करने के लिए आदिवासी कलाओं को व्यावसायिक रूप से मॉडिफाई किया गया है, जिससे कला की असल पहचान से दूर हो जाने का खतरा बढ़ा है।

4. सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता और प्रयास

सरकारी और सामुदायिक प्रयास :

सरकार ने वन धन योजना, TRIFED, शिल्प मेलों और आदिवासी संग्रहालयों के माध्यम से आदिवासी कला और संस्कृति के संरक्षण और प्रचार–प्रसार के लिए कई कदम उठाए हैं।

- शिल्प हाट और फेयर ट्रेड के जरिए आदिवासी उत्पादों को वैश्विक स्तर पर बाजार मिल रहा है।

आदिवासी युवाओं के लिए शिक्षा :

आदिवासी समुदायों के युवा पीढ़ी में पारंपरिक कला और संस्कृति के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए सांस्कृतिक शिक्षा पर जोर दिया गया है। यह पाया गया कि युवा वर्ग यदि पारंपरिक ज्ञान से जुड़ता है, तो यह उनके सामाजिक–सांस्कृतिक विकास में सहायक होगा।

5. आदिवासी कला की समकालीन प्रासंगिकता

- आदिवासी कला और संस्कृति में कई ऐसे तत्व हैं जो आज के पर्यावरणीय संकटों, सामाजिक न्याय, और सतत विकास की दिशा में योगदान दे सकते हैं।
- प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सतत जीवन पद्धति आदिवासी समाज का अभिन्न हिस्सा है, जो समकालीन समय में अधिक प्रासंगिक हो गया है।
- आदिवासी कला में प्राकृतिक संतुलन, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, और जैव विविधता की महत्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं, जो पर्यावरण संरक्षण के लिए मार्गदर्शक हो सकती हैं।

6. तकनीकी और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का योगदान

- डिजिटल माध्यमों का उपयोग आदिवासी कला के संरक्षण और प्रसार में अत्यधिक लाभकारी रहा है।
- सोशल मीडिया, ऑनलाइन गैलरी, और NFTs के माध्यम से आदिवासी कलाकारों को वैश्विक पहचान और बाजार मिला है।
- आदिवासी कला को डिजिटाइज करने के प्रयासों ने उसकी पहुंच बढ़ाई

है और युवा पीढ़ी को इस ओर आकर्षित किया है।

7. स्थिरता और सशक्तिकरण के लिए अवसर

- आदिवासी कला और संस्कृति के संरक्षण के साथ–साथ इन कलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के लिए कई अवसर भी उपलब्ध हैं।
- आदिवासी कलाकारों को स्थानीय और वैश्विक बाजारों में स्थान दिलवाकर उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रदान की जा सकती है।
- आदिवासी समुदायों को स्वयं के संसाधनों और सामूहिक रूप से कार्य करने के अवसर मिल सकते हैं।

संदर्भ सूची :

1. सिंह, आर. (2018). भारतीय जनजातीय कला का सांस्कृतिक अध्ययन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
2. शर्मा, के. पी. (2017). आदिवासी कला और परंपरा : भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन. वाराणसी :' भारती प्रकाशन।
3. पटेल, म. आर. (2019). "मध्य भारत की गोंड जनजातीय कला में सामाजिक संरचना का प्रतिबिंब।" भारतीय संस्कृति और कला जर्नल, 14(2), 45–57।
4. चौहान, एस. (2020). भारतीय आदिवासी संस्कृति और उसका विकासात्मक स्वरूप. भोपाल : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी।
5. बाला, पी. (2016). "भारतीय लोककला और जनजातीय जीवन : एक तुलनात्मक अध्ययन।" लोक संस्कृति अनुसंधान पत्रिका, 9(1), 22–34।
6. मिश्रा, आर. एन. (2021). जनजातीय कलारू रूप, रंग और संवेदना. नई दिल्लीः इंडियन आर्ट सोसाइटी।
7. देवी, एस. (2018). "झारखंड और छत्तीसगढ़ की आदिवासी चित्रकला में लोकविश्वासों की अभिव्यक्ति।" भारतीय कला समीक्षा, 5(3), 61दृ70।
8. जोशी, ह. एल. (2020). भारतीय परंपरागत कला का विकास : लोक से आधुनिकता तक जयपुर : राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन।
9. ठाकुर, ए. (2015). "जनजातीय नृत्य एवं संगीत में सांस्कृतिक पहचान का निर्माण।" संस्कृति अध्ययन त्रैमासिक, 11(4), 78–89।
10. वर्मा, डी. पी. (2022). भारतीय लोक और आदिवासी संस्कृति : ऐतिहासिक एवं सामाजिक संदर्भ. इलाहाबाद : प्रयाग शैक्षिक संस्थान।
11. नायर, एस. (2019). "भारत की पारंपरिक आदिवासी कलाओं में आधुनिकीकरण की चुनौतियाँ।" इंडियन जर्नल ऑफ विजुअल एंड कल्चरल स्टडीज, 7(2), 102–115।

साँची तथा भरहुत की बौद्ध कला में प्रतीकों का महत्व

डॉ. अंकिता शर्मा
शिक्षण सहायक, चित्रकला विभाग,
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

भारतवर्ष की प्राचीनतम संस्कृति एवं आध्यामिकता भारतीय मूर्तिकला में निहित है। कला का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक प्रकाश को प्रस्फुटित करना रहा है। मूर्तिकला भारतीय समाज की रुचियाँ, प्रवृत्तियों और आचार–विचार का जीता–जागता प्रतिबिम्ब है।

भारतीय कला का मुख्य उद्देश्य केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नहीं रहा, बल्कि वह मानव जीवन में आध्यात्मिक चेतना के प्रकाश को प्रस्फुटित करने का माध्यम रही है। भारतीय मूर्तियाँ केवल पत्थर या धातु में उकेरे गए रूप नहीं हैं, बल्कि उनमें उस युग की धार्मिक भावनाएँ, सामाजिक मूल्य और सांस्कृतिक आदर्श सजीव रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

मूर्तिकला भारतीय समाज की रुचियों, प्रवृत्तियों और आचार–विचार का जीता–जागता प्रतिबिम्ब है। मौर्य, गुप्त, चोल और पल्लव काल की मूर्तियों में जो दिव्यता, गाम्भीर्य और भावप्रवणता दिखाई देती है, वह भारतीय जीवन–दर्शन की गहराई को प्रकट करती है। इस कला में जहाँ एक ओर धार्मिक आस्था का प्रभाव है, वहीं दूसरी ओर मानवता, करुणा और सौन्दर्यबोध का उत्कृष्ट समन्वय भी दिखाई देता है।

भारतीय मूर्तिकला का मूल सार यह है कि वह हमें भौतिकता से ऊपर उठकर आध्यात्मिक अनुभूति की ओर प्रेरित करती है। यही कारण है कि भारतीय

मूर्तियाँ केवल कला की वस्तुएँ नहीं, बल्कि ध्यान और दर्शन के माध्यम बन गई हैं – जो भारतीय संस्कृति की अमरता और सार्वभौमिकता का प्रतीक हैं।

भारतीय सभ्यता लगभग आरम्भ से ही धार्मिक परिवेश में पल्लवित हुई। ये भारतीय कला का विषय हमेशा से ही धार्मिक और सामाजिक रहा है। ये कला में बाह्य सौन्दर्य का आकर्षक न होकर आत्मिक शान्ति का भाव लिए साधना का प्रतिनिधित्व करती है।

ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव में सारा देश डूब गया। इन धर्मों ने कला के माध्यम से अपने धर्मों की शाखाएँ भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में श्रेष्ठ परम्पराओं के पुष्प के रूप में पल्लवित किये। विदेशों में जब नवीन धर्म का प्रचार किया गया तो कला ने ही उस धर्म की कल्पना और सिद्धान्तों को विलक्षण सुन्दरता एवं संवेदनीयता प्रदान की।

धर्मों ने केवल आचार–विचार और दर्शन के स्तर पर ही नहीं, बल्कि कला के विविध माध्यमों के द्वारा भी मानव–चेतना को रूपायित किया। मूर्तिकला, स्थापत्य, चित्रकला और शिल्प सभी ने इन धर्मों के आदर्शों, सिद्धांतों और भावनाओं को अभिव्यक्ति दी।

भारत में इन तीनों धर्मों के अनुयायियों ने कला को धर्म–प्रचार और लोकजागरण का सशक्त साधन बनाया। बौद्ध धर्म के शांत, सौम्य और करुणामय भाव बामियान, सांची, सारनाथ और अजंता की मूर्तियों एवं चित्रों में स्पष्ट झलकते हैं। जैन धर्म की अहिंसा, संयम और आत्मशुद्धि की भावना को श्वेत संगमरमर की शांत मूर्तियों ने सजीव बना दिया। वहीं ब्राह्मण धर्म (वैदिक–हिन्दू परंपरा) में मूर्तिकला का उद्देश्य दैवी शक्तियों का प्रतीकात्मक रूप में दर्शन

कराना रहा कृ जो खजुराहो, कोणार्क और मदुरै जैसे मंदिरों में अपने चरम वैभव पर दिखाई देता है।

जब इन धर्मों का प्रचार भारत की सीमाओं से बाहर हुआ, तब भी भारतीय कला ने ही इनके संदेश को स्वरूप और संवेदना प्रदान की। श्रीलंका, थाईलैंड, चीन, जापान, नेपाल और इंडोनेशिया जैसे देशों में बौद्ध धर्म के प्रसार में भारतीय मूर्तिकला और स्थापत्य परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वहाँ की मूर्तियों और मंदिरों में आज भी भारतीय सौंदर्यबोध और आध्यात्मिक चेतना की झलक दृष्टिगोचर होती है।

वास्तव में, भारतीय धर्मों ने कला को केवल सौंदर्य का नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया कृ और कला ने धर्म को दृश्य और संवेदनशील रूप प्रदान कर उसे अमर बना दिया। यही कारण है कि भारतीय कला, धर्म और संस्कृति का यह समन्वय आज भी विश्व की सर्वश्रेष्ठ सांस्कृतिक विरासत के रूप में आदर और प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

भारतीय संस्कृति एवं कला चिन्तन श्रृंखला में बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण योगदान है जहाँ एक तरफ तृष्णा के विनाश का मुख्यतम आधार इसमें समाहित है. वहीं दृष्टि से समाधि तक योग की वैज्ञानिक मीमांसा है। सभी को समान और एकीकृत करने की दिशा में भगवान बुद्ध का योगदान अप्रतिम है।

बौद्ध कला में हमें अलौकिक तत्व के रूप में प्रतीकों का समावेश मिलता है। सांची तथा भरहुत की बौद्ध कला में हमें प्रतीकों के रूप में भगवान के साक्षात् दर्शन होते हैं।

कला में ऐसी वस्तु जो साधारणतः दृष्टिगत नहीं होती अध्ययन तथा अनुभव से बोधगम्य, अंग को इंगित करने वाली तथा संकेत करने वाले तत्व प्रतीक है। लौकिक रूप में प्रतीक शब्द को समझने के लिए साधारण भाषा में कह सकते हैं कि कोई वस्तु है उसका हमें बोध होता है वह हमें अच्छी लगती है उसके रूप की कल्पना करते हैं और उसे नाम दे देते हैं।

सांची तथा भरहुत में प्रतीकों के विभिन्न रूपों के अर्न्तगत पशु–पक्षी, जानवर, स्वास्तिक, वृक्ष, चरण चिन्ह आदि की सहायता से कला ने अपना वर्चस्व स्थापित किया है। सांची का स्तूप आज भी हमारी संस्कृति का एक

जीता–जागता उदाहरण है। भरहुत स्तूप आज भले ही नष्ट हो गया हो लेकिन कलकत्ता म्यूजियम में आज भी उनके अवशेषों को नये रूप में ढाला गया है। ज्यों–ज्यों मनुष्य के विचार विकसित होते गये वैसे–वैसे उनके प्रतीकों के रूप भी विकसित होते गये।

सांची और भरहुत के स्तूप भारतीय बौद्ध कला के प्रारम्भिक विकास के उज्ज्वल उदाहरण हैं, जहाँ कला ने प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक विचारों को रूप और अर्थ प्रदान किया। इन स्थलों पर मूर्तिकला ने प्रत्यक्ष देवमूर्तियों के स्थान पर प्रतीकों के विविध रूपों से बौद्ध धर्म की अवधारणाओं को व्यक्त किया।

सांची तथा भरहुत में निर्मित रेलिंगों, तोरणों और शिलाखंडों पर उकेरे गए पशु–पक्षी, कमल, स्वास्तिक, धर्मचक्र, वृक्ष, सिंह, हाथी, घोड़ा और चरणचिह्न आदि न केवल सजावटी तत्त्व थे, बल्कि गहन धार्मिक और दार्शनिक अर्थ से परिपूर्ण थे। उदाहरणार्थ, बोधिवृक्ष ज्ञान का प्रतीक था, धर्मचक्र बुद्ध के उपदेशों के प्रवर्तन का सूचक, सिंह शक्ति और निर्भीकता का प्रतीक, तथा चरणचिह्न स्वयं बुद्ध की उपस्थिति और पवित्रता का संकेत देते थे।

सांची का महान स्तूप आज भी भारतीय संस्कृति, कला और आस्था का जीता–जागता प्रतीक है। इसकी स्थापत्य योजना और मूर्तिकला में भारतीय कलाकार की कल्पनाशक्ति, तकनीकी दक्षता और गहरी धार्मिक निष्ठा का अद्भुत संगम दिखाई देता है। भरहुत स्तूप यद्यपि कालांतर में नष्ट हो गया, तथापि उसके मूर्तिशिल्प के अनेक अवशेष आज भी कलकत्ता संग्रहालय (Indian Museum] Kolkata) में सुरक्षित हैं, जो उस युग की कलात्मक चेतना का सजीव परिचय कराते हैं।

ज्यों–ज्यों मानव की चेतना और विचारधारा विकसित होती गई, त्यों–त्यों उसके प्रतीक और कलात्मक अभिव्यक्ति के स्वरूप भी विकसित होते गए। भरहुत और सांची से प्रारंभ होकर यह प्रतीकात्मक परंपरा बाद के काल में अमरावती, नागार्जुनकोंडा और अजंता–एलोरा की मूर्तिकला में और भी समृद्ध एवं अभिव्यंजक रूप में दिखाई देती है।

बौद्धकला ने भगवान को सर्वप्रथम समाज के सामने प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया बाद में भगवान बुद्ध की मूर्तियां बनने लगीं।

प्रतीकों का सबसे अधिक प्रभाव धर्म पर पड़ा। धर्म का सम्बन्ध कला से प्रागढ़ रहा है। दोनों में सम्बन्ध विच्छेद करना असम्भव है। दोनों ही रूप में कला ने धर्म को ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। कला मानव मस्तिष्क द्वारा समझे जाने वाला आन्तरिक सौन्दर्य है। आध्यात्मिक तथ्यों को सफलतापूर्वक सीखने और समझने में प्रतीक भाषा अत्यन्त सरल होती है।

सांची तथा भरहुत ही कला में भगवान बुद्ध को अनेक प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया गया है। कहीं उनके चरण चिन्ह, आसन, वृक्ष आदि को अंकित किया गया है। इन दोनों ही स्थानों पर प्रतीकों के रूप में जातक कथाओं को दिखाया गया है।

शुंगकाल में भरहुत और सांची में बुद्ध के पूर्व जन्मों पर आधारित कथाओं, जीवनवृत्त से सम्बन्धित चित्रों, पेड–पौधों, जानवरों, पक्षी, मानवीय आकृतियों का प्रयोग शुरु हुआ।

स्वास्तिक मानव समाज के कल्याण का प्रतीक है जो जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म में प्रतीकों के रूप में हमें सांची में देखने को मिलता है। सांची के तोरणद्वारों पर स्वास्तिक का चिन्ह मिला है सर्वजन सुखाय की भावना से स्तूपों का निर्माण बौद्ध धर्म में हुआ इसी भावना को लिए स्वास्तिक चिन्ह का प्रयोग हुआ।

शुंगकाल के समय भारतीय मूर्तिकला और स्थापत्य कला ने एक नवीन चेतना और अभिव्यक्ति का स्वरूप ग्रहण किया। इस काल में भरहुत और सांची जैसे बौद्ध स्थलों पर बुद्ध के पूर्व जन्मों पर आधारित जातक कथाओं तथा उनके जीवनवृत्त से संबंधित दृश्यों का चित्रण आरंभ हुआ। कला ने धर्म, दर्शन और मानवीय संवेदना के बीच एक सेतु का कार्य किया।

इन मूर्तिशिल्पों में वृक्ष, पशु–पक्षी, लताओं–पौधों और मानवीय आकृतियों का अत्यंत सूक्ष्म और भावनात्मक प्रयोग किया गया, जिससे तत्कालीन समाज की प्रकृति–संवेदना और धार्मिक प्रतीकबोध का परिचय मिलता है। बुद्ध की मूर्ति के प्रत्यक्ष रूप के अभाव में कलाकारों ने प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक उपस्थिति को व्यक्त किया। जैसे धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, सिंह, कमल और चरणचिह्न।

इसी काल में स्वास्तिक चिन्ह भी कला में एक सार्वभौमिक मंगल प्रतीक के रूप में उभरा। स्वास्तिक मानव समाज के कल्याण, समृद्धि और सर्वजन–सुख की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। जैन, बौद्ध और हिन्दू कृ तीनों धर्मों में इसका विशेष स्थान रहा है। सांची के तोरणद्वारों और रेलिंगों पर उत्कीर्ण स्वास्तिक चिह्न इसी आदर्श का प्रतीक है।

बौद्ध धर्म की "सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय" की उदात्त भावना से प्रेरित होकर ही सांची जैसे स्तूपों का निर्माण हुआ, जहाँ स्वास्तिक का प्रयोग न केवल सजावटी चिन्ह के रूप में, बल्कि सार्वभौमिक कल्याण और आध्यात्मिक संतुलन के प्रतीक के रूप में किया गया। यह प्रतीक भारतीय संस्कृति की उस निरंतर परंपरा को दर्शाता है, जिसमें कला, धर्म और मानवता एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं।

वृक्ष को प्रतीक के रूप में ग्रहण करने की परम्परा उपनिषदों में देखने को मिलती है। सांची तथा भरहुत दोनों ही जगह की कलाओं में वृक्ष को दर्शाया गया है। बौद्ध कला में बोधिवृक्ष एक अतीव प्रचलित विषय है। बोधिवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध ने सारनाथ में उपदेश दिया था। सांची तथा भरहुत दोनों ही जगह भगवान बुद्ध का अहसास कराने के लिए बोधिवृक्ष का अंकन किया है। बोधिवृक्ष का बहुतया से चित्रण देखने को मिलता है। सांची तथा भरहुत के स्तम्भों पर मनुष्यों द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा का दृश्य है, यहाँ बोधिवृक्ष भगवान बुद्ध के रूप में विराजमान है।

बौद्धकला में कमल या पद्म का सबसे अधिक महत्तव है। कमल सृष्टि का प्रतीक है, विकसित पद्म सूर्य के प्रतीक की भाँति है। कमल का प्रयोग भरहुत तथा सांची में बौद्ध घेरों पर बनाया गया है। जातक कथाओं में कमल का प्रयोग है, माँ की कोख से जन्म लेने वाले शिशु का प्रतीक कमल है।

भरहुत तथा सांची में प्रतीकों के रूप में मंगलघट का चित्रण उत्कीर्ण है। धार्मिक पूजा में सर्वप्रथम त्रिदेवों का प्रतीक मानकर पूर्णघट की स्थापना की जाती है। पूर्णघट सुख–सम्पत्ति और जीवन की पूर्णता का प्रतीक है।

यक्ष यक्षणियों का चित्रण भी दोनों स्थानों पर देखने को मिलता है। इन दोनों का चित्रण मंगलकारी माना जाता था। संसार की समृद्धि के लिए यक्ष यक्षणियों

की पूजा की जाती थी।

भरहुत में नागों का चित्रण भी मिला है। बौद्धों ने सर्प को धर्म का प्रतीक माना है। भरहुत की कला में नाग देवताओं को जल से निकलते दिखाया गया है मानों जल के अन्दर से संसार को ज्ञान देने के लिए नाग देवता के रूप में भगवान अवतरित हुए हो।

सिंह बुद्ध का प्रतीक माना जाता है। अलौकिक रूप में सिंह का प्रयाग बौद्ध कलाकारों ने प्रचुरता से किया है। गौतम बुद्ध शाक्य देश के सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। सांची में चार सिंहों युक्त स्तम्भ शीर्षक है। बुराई पर सत्य की विजय का प्रतीक सिंह है। भारतीय कला प्रतीकात्मक थी।

बौद्धों का मुख्य प्रतीक त्रिरत्न सभी देशों में पाया जाता है। जहाँ भी बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। बौद्धों की श्रद्धा के तीन प्रतीक बुद्ध, धर्म एवं विहार के रूप में वर्णित है। त्रिरत्न को सर्वशक्तिमान बुद्ध को प्रकट करने वाली मणि का पवित्र प्रतीक मानते हैं। भरहुत प्रतिकाओं में त्रिरत्न प्रतीक विश्वभु एवं शाक्यमुनि नामक बुद्धों के सिंहासन के ऊपर अंकित है। प्रत्येक बुद्ध का सिंहासन बोधिवृक्ष के नीचे प्रदर्शित है। भगवान की उपस्थिति दर्शाने के लिए सिंहासन के ऊपर छत्र लगाया गया है।

बौद्ध धर्म के प्रमुख प्रतीकों में "त्रिरत्न" का विशेष स्थान है। यह प्रतीक बौद्ध साधना और दर्शन का मूल आधार माना जाता है। जहाँ–जहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हुआ कृ चाहे भारत, श्रीलंका, नेपाल, म्यांमार, चीन, जापान या तिब्बत – वहाँ यह प्रतीक बुद्ध, धर्म और संघ (विहार) की त्रयी का प्रतिनिधित्व करता है।

त्रिरत्न को एक पवित्र मणि (Ratna) के रूप में माना गया है, जो स्वयं सर्वशक्तिमान बुद्ध की ज्ञान–प्रभा को प्रकट करती है। यह तीनों तत्व मिलकर बौद्ध दर्शन के आध्यात्मिक सार को अभिव्यक्त करते हैं –

- बुद्ध : ज्ञान और करुणा के स्रोत,
- धर्म : सत्य और मार्ग का प्रतीक,
- संघ (विहार) : अनुशासन और साधना का प्रतिनिधि।

भरहुत स्तूप की मूर्तिकला में त्रिरत्न प्रतीक का प्रयोग अत्यंत सुंदर ढंग से किया गया है। यहाँ यह प्रतीक विश्वभु और शाक्यमुनि नामक बुद्धों के सिंहासनों के ऊपर अंकित है, जो बुद्ध की उपस्थिति का संकेत देता है। यह उस युग की

अनुपस्थित मूर्तिकला शैली (Aniconic Phase) का प्रमाण है, जब बुद्ध की प्रतिमा के स्थान पर केवल प्रतीकों के माध्यम से उनकी उपस्थिति को दर्शाया जाता था।

प्रत्येक बुद्ध का सिंहासन बोधिवृक्ष के नीचे प्रदर्शित किया गया है, जो ज्ञानप्राप्ति और आत्मबोध का प्रतीक है। सिंहासन के ऊपर स्थापित छत्र (Chatri) भगवान की पवित्रता, सम्मान और दिव्यता का द्योतक है। इस प्रकार, त्रिरत्न, बोधिवृक्ष, सिंहासन और छत्र कृ ये सभी मिलकर उस युग की धार्मिक भावना और कलात्मक अभिव्यक्ति का संपूर्ण प्रतीकात्मक तंत्र निर्मित करते हैं।

वास्तव में, बौद्ध मूर्तिकला में त्रिरत्न केवल एक प्रतीक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक ज्योति और सार्वभौमिक करुणा का दर्पण है कृ जिसने भारत से लेकर समूचे एशिया तक बौद्ध संस्कृति को एक सूत्र में पिरोया।

सांची के स्तम्भों पर भगवान बुद्ध के चरण चिन्हों को बनाया गया है। चरणों के मध्य में धर्मचक्र दिखाया गया है। ये चरण चिन्ह भगवान बुद्ध का आभास कराते हैं। दोनों ही स्थानों के स्तम्भों पर प्रतीक के रूप में चक्र को दर्शाना बौद्ध धर्मावलम्बियों की विशेषता रही है।

बौद्ध कला में जानवरों का चित्रण भी स्तम्भों पर प्रतीक के रूप में मिलता है, गज, वृषभ, हंस, गरुढ, मोर, शुक, उलूक आदि का अंकन हुआ है।

बौद्ध कला आदर्शवादी, भ्रमात्म, प्रतीकात्मक और दृष्टिगत है। बौद्ध कला में प्रतीकात्मकता का अंकन कितना सशक्त, सप्रमाण और अर्थवान है। डॉ० राधाकमल मुखर्जी के अनुसार बौद्ध कलाकारों ने बौद्ध धारणा को अस्वीकार करके ललित एवं काव्यात्मक प्रतीकों द्वारा मनोभावों और मूल्यों को व्यक्त किया है।

बौद्ध कला अपनी प्रकृति में आदर्शवादी, भावप्रधान, प्रतीकात्मक और दृष्टिगत है। इसका उद्देश्य केवल दृश्य सौंदर्य का निर्माण नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति और अंतःचेतना को अभिव्यक्त करना है। बौद्ध कलाकारों ने अपने सृजन में बाह्य रूप से अधिक अंतर्मन के भावों, श्रद्धा और साधना को चित्रित किया। बौद्ध कला की सबसे विशिष्ट विशेषता इसका प्रतीकात्मक अंकन है। बुद्ध के जीवन और उपदेशों को प्रारंभिक काल में प्रत्यक्ष रूप में नहीं, बल्कि प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। यह प्रतीकात्मकता न केवल सशक्त और सप्रमाण है, बल्कि अत्यंत अर्थगर्भ और दार्शनिक गहराई से परिपूर्ण भी है।

धर्मचक्र, बोधिवृक्ष, सिंहासन, छत्र, कमल, और चरणचिह्न जैसे प्रतीक बुद्ध के जीवन, ज्ञान और करुणा के शाश्वत रूपकों के रूप में विकसित हुए।

डॉ. राधाकमल मुखर्जी के शब्दों में – "बौद्ध कलाकारों ने बौद्ध धारणा को अस्वीकार करके नहीं, बल्कि उसे ललित और काव्यात्मक प्रतीकों के माध्यम से मानव मनोभावों और मूल्यों की अभिव्यक्ति में रूपांतरित किया।"
यह कथन इस बात का प्रमाण है कि बौद्ध कलाकारों के लिए कला केवल धार्मिक या औपचारिक माध्यम नहीं थी, बल्कि मानवता, शांति और सौंदर्य के आदर्शों का संवेदनशील सृजन थी।

बौद्ध कला में इस प्रतीकात्मकता ने उसे सर्वव्यापकता और सार्वभौमिकता प्रदान की। यही कारण है कि भारत से लेकर मध्य एशिया, चीन, जापान, नेपाल और दक्षिण–पूर्व एशिया तक फैली बौद्ध कलात्मक परंपरा में एक समान भावबोध दिखाई देता है कृ जो मानव आत्मा की शांति और करुणा की सार्वभौमिक खोज का प्रतीक है।

आध्यात्मिक संवेदना बौद्धिक प्रभाव, वैचारिक प्रबलता भौतिक नाजुकता, स्वभावगत सरलता का समावेश बौद्ध मूर्तिकला में बड़े पैमाने पर बौद्ध कलाकारों ने करने का प्रयास किया है। सांची तथा भरहुत दोनों ही स्थानों पर पवित्रता, ओज, आध्यामिकता और मानवीय लालसा को एक साथ स्थान मिला है। बौद्ध कला की इस चिन्तन भावना ने काफी बड़े भू–भाग पर अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाला।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. कोसांबी दामोदर प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, पृष्ठ सं० 87
2. उपाध्याय, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान,
3. इरविन एडमैन ललित कलायें और मनुष्य पृष्ठ सं० 12
4 भार्गव सरोज, प्राचीन भारतीय कला में आलेखन समीक्षात्मक अध्ययन
5. इंडियन आर्कओलॉजी ए रिव्यू (लेख)
6. एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकॉनोग्राफी, खण्ड– 1 भाग पृष्ठ सं० 6
7. चन्द्र जगदीश, सांधी के स्तूप पृष्ठ सं०9
8. डॉ० दलजीत, मॉन्यूमेन्ट्स ऑफ इण्डिया, पृष्ठ सं० 65
9. कर्निंधम ए० दि स्तूप ऑफ भरहुत

लोक जीवन और उसमें जीवंत होती कला

डॉ. रानी शर्मा
शिक्षण सहायक, चित्रकला विभाग,
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

सारांश

लोकजीवन भारतीय संस्कृति की आत्मा है, और उसमें निहित कलाएं उस आत्मा की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। लोककला समाज के जीवन–मूल्यों, परंपराओं, विश्वासों और सामूहिक अनुभूतियों को रूपायित करती है। यह शोध–पत्र लोक जीवन और लोककला के परस्पर संबंध, उनकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक भूमिका, परंपरा और नवाचार की प्रक्रिया तथा सांस्कृतिक निरंतरता की विवेचना करता है। इसमें यह स्थापित किया गया है कि लोककला केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं बल्कि सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है, जो समय के प्रभावों के बीच भी प्रासंगिक बनी हुई है।

प्रस्तावना

भारत की सांस्कृतिक पहचान उसकी विविध लोककलाओं में निहित है। लोककला किसी विशेष वर्ग की नहीं होतीय वह जनजीवन की सामूहिक चेतना से उपजती है। ग्रामीण परिवेश, धार्मिक आस्था, पारिवारिक रीति–रिवाज और प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ जीवन लोककलाओं का मूल प्रेरणास्रोत है। यही कारण है कि लोकजीवन की सहजता, उत्सवप्रियता और भावनात्मक सृजनशीलता लोककलाओं में मूर्त रूप लेती हैं।

लोक जीवन और कला का संबंध

लोककला लोकजीवन की संवेदना को दृश्य, श्रव्य, और गतिशील रूप में व्यक्त करती है। लोकगीत, नृत्य, चित्रकला, हस्तशिल्प आदि विविध कलात्मक रूप जनसामान्य के जीवन की अखंडता को प्रकट करते हैं। कोहबर चित्रण, संजा चित्र, भित्ति सजावट, गोवर्धन पूजा या नवरात्रि जैसे सामूहिक अनुष्ठान उस समेकन और समुदाय–भावना के प्रतीक हैं जो लोककला का मुख्य तत्व है।

राजस्थान की फड़ चित्रकला, बिहार की मधुबनी, गुजरात का डांडिया नृत्य, पंजाब का गिद्धा, और महाराष्ट्र की लावणी जैसी लोककलाएं अपने–अपने परिवेश की विशिष्ट पहचान को प्रस्तुत करती हैं। इन कलाओं में जीवन व्यवहार, श्रम संस्कृति और धार्मिक विश्वासों का सजीव संगम दृष्टिगत होता है।

लोककला की सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका

लोककला समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों का वाहक तत्व है। यह व्यक्ति और समुदाय के बीच पुल का कार्य करती है। फसल कटाई, विवाह, जन्म, या धार्मिक पर्वों के अवसर पर सामूहिक गायन और नृत्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि सामाजिक एकता और आनंद का माध्यम बनते हैं।

लोककला में निहित धार्मिक प्रतीक – जैसे सूर्य, चंद्रमा, गाय, बांसुरी या वृक्षकृसृष्टि और जीवन के गूढ़ रहस्यों का बोध कराते हैं। लोकगीतों के माध्यम से जीवन के चक्रीय क्रम का उत्सव मनाया जाता है। इस प्रकार लोककला समाज को भावनात्मक रूप से जोड़ती है और सामूहिकता की भावना को पोषित करती है।

परंपरा, परिवर्तन और नवाचार

लोककला स्थिर नहीं रहती। समय, परिस्थिति और सामाजिक परिवर्तन के साथ उसमें नवीनता आती रहती है। यद्यपि लोककलाओं की जड़ें परंपरा में हैं, फिर भी वे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप रूपांतरण को स्वीकार करती हैं। आधुनिक माध्यमोंकृटीवी, फिल्म, सोशल मीडियाकृके प्रभाव से लोककला के प्रस्तुतीकरण में परिवर्तन देखा जा सकता है।

उदाहरणतः डिजिटल प्लेटफॉर्म पर मधुबनी चित्रकारी और वारली कला विश्व स्तर पर पहचान बना चुकी हैं। इससे कलाकारों को नए अवसर प्राप्त हुए हैं, तथा परंपरागत तकनीकों के संरक्षण और संवर्धन को भी बल मिला है।

लोककला का शिक्षात्मक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण

लोककला केवल सज्जा या मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि शिक्षात्मक माध्यम भी है। लोककथाओं, प्रतीकों और चित्रों में पर्यावरणीय चेतना, मानवीय संवेदना और सहअस्तित्व के मूल्य निहित रहते हैं।

मध्य भारत की भील चित्रकला, महाराष्ट्र की वारली, और हिमालय की थांका चित्र परंपराएं मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक संबंध का दार्शनिक अर्थ प्रकट करती हैं। विद्यालयों में लोककला को शिक्षण–सामग्री के रूप में अपनाए जाने से छात्र सांस्कृतिक विविधता और सृजनशीलता दोनों से परिचित हो सकते हैं।

निरंतरता और सांस्कृतिक समन्वय

लोककलाएं पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक और व्यवहारिक परंपराओं के माध्यम से चलती रहती हैं। इनकी जीवंतता का रहस्य यही है कि ये समाज की सक्रियता से जुड़ी रहती हैं। नई पीढ़ी जब उत्सवों, लोकगीतों और हस्तशिल्प परंपराओं में भाग लेती है, तो परंपरा स्वतः आगे बढ़ती है।

भारत में लोककला का स्वरूप सर्वधर्म–सामंजस्य का भी प्रतीक है। विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों के बीच संवाद और समन्वय से लोककला बहुरंगी सांस्कृतिक धारा के रूप में विकसित हुई है, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को मूर्त करती है।

निष्कर्ष

लोक जीवन और लोककला का संबंध भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना का आधार है। लोककला में जीवन की सहजता, सामूहिकता, पर्यावरणीय संबंध और नैतिक दृष्टि अंतर्निहित हैं। समय के परिवर्तन के बावजूद लोककला अपने मूल स्वरूप को बनाए रखते हुए जीवन की सार्थकता को व्यक्त करती रहती है।

अतः लोककलाएं केवल कलात्मक रचनाएं नहीं, बल्कि समाज की जीवित परंपरा हैं जो अतीत, वर्तमान और भविष्य को जोड़ने वाली सांस्कृतिक कड़ी के रूप में कार्य करती हैं।

संदर्भ सूची

1. लोककला : सहअस्तित्व भाव से निर्देशित होती परंपरा एवं आधुनिकता, Folkartopedia.
2. लोक कलाओं का महत्व एवं उनका संरक्षण, MarathiKavita.
3. पद्मश्री श्याम शर्मा की नजर से लोककला और समाज, Folkartopedia.
4. Ph-D-] Banda] India] ShodhKosh Journal
5. लोक कलाओं की विशेषताएँ, Samajkary Shiksh
6. लोक कला में अवधारणाएँ, विकिपीडिया
7. लोक कला, विकिपीडिया
8. भारतीय संस्कृति के संवर्धन में लोककलाओं का अवदान, Granthaalayah Publication.

भूपेन खक्खर के प्रमुख चित्रों में मानवीय संवेदना का वर्णन

श्री गजेन्द्र सिंह, शोधार्थी
ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
डॉ. श्वेता पाण्डेय, शोध निर्देशिका एवं समन्वयक
ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रस्तावना

भारतीय समकालीन कला के इतिहास में भूपेन खक्खर का नाम अग्रिम रहा हैं उन्होंने कलाकार के रूप में जिस कला शैली को विकसित किया है, वह कला को "जन–जीवन" के निकट लाकर उसे एक नया द्रष्टि कोण प्रदान करता है। वे ऐसे चित्रकार थे जिन्होंने अपने चित्रों में न केवल सामाजिक यथार्थ को उकेरा बल्कि उनके चित्रों में मनुष्य की आन्तरिक संवेदनाओं, भावनाएँ, पीड़ा और अपार प्रेम से भरा ह्रदय मूर्त रूप में दिखाई देता हैं उनके बनाये गए चित्र समाज में एक नई क्रांति लाने में सफल रहे खक्खर की कला समाज के लिए आइना हैं।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जब भारतीय कला विश्व स्तर पर आधुनिकता और अमूर्तता के प्रभाव में बह रही थी, तब भूपेन खक्खर ने यथार्थ और मानवीय अनुभवों की ओर लौटने का साहस किया। उनके चित्रों में किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं दिखाई देती वे जीवन की सादगी, संघर्ष, प्रेम और आत्मस्वीकार के सहज चित्रकार हैं। उहोंने अपने जीवन के उस पक्ष काले हिस्से को पेंट किया रहे जिसे समाज कभी स्वीकारने वाला नहीं था।

भारतीय कला में उनकी शैली पॉप कला के गहरे व चटक रंगों से सजी हैं उनकी कला इस बात की गवाही देती है कि आधुनिकता का अर्थ केवल तकनीकी नवाचार नहीं, बल्कि मानवीय गहराई और संवेदना की पुनः खोज भी है। जो समाज को सचाई के कई रास्ते दिखाती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. भूपेन खक्खर के चित्रों में मानवीय संवेदना का अध्ययन करना हैं।
2. खक्खर की कला में सामाजिक तत्वों का उल्लेख करना हैं।
3. कला जगत के लिए भूपेन खक्खर की कला शैली की उपयोगिता का वर्णन करना हैं।

4. चित्रों में निहित विभिन्न रंगों का मनोविज्ञानिक प्रभाव का उल्लेख करना हैं।

शोध विधि

इस शोध कार्य में प्रयुक्त की गई शोध पद्धति गुणात्मक का प्रयोग किया गया हैं इस पद्धति में गैर संख्यात्मक डेटा का उपयोग करके मानवीय, अनुभवों, द्रष्टिकोणों और प्रेरणाओ को समझने में किया जाता है।

शोध के स्रोत

विषय से सम्बंधित पुस्तकें, शोध आर्टिकल, रिसर्च पेपर, लेख, न्यूज पेपर, डायरी और साक्षात्कार आदि।

मुख्य बीज : मानवीय संवेदना

जीवन परिचय

1934 में भूपेन खक्खर का जन्म बड़ौदा (गुजरात) में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा के बाद उन्होंने अर्थशास्त्र में स्नातक और चार्टर्ड अकाउंटेंसी की पढ़ाई की। उनका व्यावसायिक जीवन अकाउंटेंट के रूप में प्रारंभ हुआ, किंतु उनका मन संख्याओं में नहीं लगा, वह तो रंगों की दुनिया में खोये हुए थे। इसीलिए उन्होंने बड़ौदा के ललित कला संस्थान, महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय में कला का अध्ययन किया। 1960 के दशक में बड़ौदा स्कूल भारतीय आधुनिक कला का केंद्र बन चुका था। इस दोहरान भारत के प्रसिद्ध कलाकार जैसे गुलाम मोहम्मद, शेख, जगदीश स्वामीनाथन, और के.जी. सुब्रह्मण्यम भारतीय कला में 'स्वदेशी आधुनिकता' की अवधारणा विकसित कर रहे थे। भूपेन खक्खर इसी बौद्धिक वातावरण में परिपक्व हुए।

उन्होंने यूरोपीय चित्रकला, विशेषकर पॉप कला और हेनरी रूसो की कला ने उनके पर गहरा प्रभाव छोड़ा, परंतु खक्खर की दृष्टि उनके आस पास के जीवन की तरफ मुड़ गई इससे उहोने आन्तरिक पक्ष को हमेशा दिखाने का प्रयास किया। उन्होंने कहा था कृ "मैं उन लोगों को चित्रित करना चाहता हूँ जिन्हें समाज नहीं देखता कृ वे लोग जो हर दिन संघर्ष करते हैं, और फिर भी जीते हैं।" उनकी कला यथार्थ पर निर्भर करती हैं वह उन सत्यो को उजागर करना चाहते थे जिसे समाज देखना पसंद नहीं करता हैं।

भूपेन खक्खर के प्रमुख चित्र

भूपेन खक्खर के चित्र केवल कला के नमूने नहीं हैं य वे मानवीय स्थिति पर गहन टिप्पणियाँ हैं। उन्होंने अपनी कला को एक आईने के रूप में इस्तेमाल किया, जिसमें भारतीय समाज की कड़ी सचाई और आम आदमी की भावनाओं को ईमानदारी से प्रतिबिंबित किया हैं। किस्मत के भरोसे रहने वाले समुदाय की आवाज बनने से लेकर अपने स्वयं के जीवन के संघर्षों को चित्रित करने तक, खक्खर ने कला के माध्यम से मानवीय संवेदना के हर पहलू को चित्रित किया। उनकी अनूठी कलात्मक शैली, बोल्ड रंगों का उपयोग, और संवेदनशील विषय वस्तु ने उन्हें भारतीय आधुनिक कला में एक अमूल्य स्थान दिलाया है। खक्खर का काम आज भी प्रासंगिक है, जो हमें जीवन की सच्चाइयों, पहचान की खोज, और सार्वभौमिक मानवीय भावनाओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

1. तुम सबको खुश नहीं रख सकते (1981)

यह चित्र भूपेन खक्खर की सबसे प्रसिद्ध और आत्म संवेदना परक कृतियों में से एक है। इसमें खक्खर ने स्वयं को एक नग्न व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है, जो एक बालकनी से बाहर झांक रहा है। नीचे की ओर एक कस्बाई दृश्य दिखाई देता है जिसमे एक गधे और बाप बेटे की कहानी अंकन किया गया हैं जिसमे लोग बातें कर रहे हैं, गधे पर सवार बाप बेटे पर समाज द्वारा व्यंग कसते हुए दिखाया गया हैं, और सामाजिक जीवन की हलचल चल रही है। इस चित्र में खक्खर अपने आपको स्वीकार करते हुए कहते हैं तुम हर किसी को खुश नहीं रख सकते एस लिए अपने आपको खुश रखना तुम्हारी जिम्मेदारी हैं मै अपने आपको खुश रखता हूँ। उनका यह निर्णय साहसिक मालूम पड़ता हैं कला के माध्यम से खक्खर अपनी समलैंगिकता को खुल कर प्रस्तुत करते है। यह आत्मचिंतन और समाज के बीच के संघर्ष का प्रतीक है।

रेखाएँ लोक शैली भांति दिखाई देती हैं चित्र में गाढ़े रंगों का प्रयोग किया गया हैं रंगों की गहरी चमकती आभा दिखाई देती हैं विशेषकर नारंगी और नीले रंग की तानो का प्रयोग किया गया हैं प्रतीकात्मक रूप से ही कलाकार आपनी ह्रदय की बात को 'समाज' के सामने प्रस्तुत करता हैं। यह चित्र कैनवस पर तेल रंगों द्वारा बनाया गया हैं वर्तमान में यह चित्र टेट आर्ट गैलरी लन्दन के संग्रह में संग्रहित हैं।

'प्लास्टिक के फूलों के गुलदस्ते वाला आदमी' तुम सबको खुश नहीं रख सकते

2. 'प्लास्टिक के फूलों के गुलदस्ते वाला आदमी' (1976)

यह चित्र एकांत की भावना का गहरा आभास कराता हैं जिसमें भारतीय मध्यमवर्गीय जीवन की परेशानी को उजागर करते हुए बनाया गया था। इस चित्र के केंद्र में सफेद कमीज पहने एक व्यक्ति को अंकित किया हैं व्यक्ति के चेहरे पर अनिश्चितता और संकोच के भाव प्रदर्शित हो रहे हैं इस आकृति के दोनों हाथ आपस में सीने के नीची मुड़े हुए हैं पुरुष अपने दाहने हाथ में फूलों का गुलदस्ता लिए खड़ा है लेकिन उस गुलदस्ते के फूल प्लास्टिक बनाये गए हैं, जिनमें अपनी खुद की खुशबु नहीं हैं वह केवल बनाबटी सुन्दरता और आकर्षण हैं जो की झूठा हैं।

यह चित्र उस समय के भारतीय समाज की कृत्रिम भावनाओं और दिखावटी शालीनता का प्रतिनिधित्व करता है। इस में चित्रित आकृतियाँ और वस्तुएं इस प्रकार चित्रित की गई हैं जिसने कोई प्रेमानुभूति समझ नहीं आती इस चित्र की पृष्ठभूमि में नारंगी व हरे रंग से शहर का दृश्य अंकित किया गया हैं यह चित्र राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय नई दिल्ली के संग्रह में संग्रहित है।

3. जनता वॉच रिपेयरिंग' (1972)

भूपेन अपने चित्रों में आम आदमी की कड़ी मेहनत को दिखाने का पूरा प्रयास करते इस कथन की पुष्टि उनके जनता वॉच रिपेरिंग चित्र से स्पष्ट होती हैं जिसमे एक साधारण व्यक्ति अपनी छोटी सी दुकान में घड़ियाँ ठीक कर रहा है

उसकी लगन से मेहनत को उजागर करना वह अपने कार्य डूबा हैं उसे किसी से कोई मतलब नहीं उसका केंद्र बिंदु घड़ी है उसके कमरे में कई प्रकार की घड़ियाँ की कमरे की पिछली दीवाल पर बनी हैं चित्र की प्रष्टभूमि नील और हल्के गुलाबी से चित्रित हैं घड़ी रिपेरिंग करते व्यक्ति के चेहरे पर नारंगी रंग का प्रकाश भी दिखाया गया हैं जो संध्या का सूचक हैं

जिससे कलाकार यह बताने चेष्टा कर रहा हैं सामान्य व्यक्ति सुबह से शाम तक अपने कार्य में लगा रहता हैं उसकी मेहनत और कार्य कुशलता को हमें देखने की अवश्यकता हैं शायद यही भूपेन का द्रष्टिकोण रहा हो खक्खर सामान्य जीवन की गतिविधियों को बड़ी दिलचस्पी से चित्रित करते थे उदाहरणता उनके चित्र 'डी लक्स दर्जी' की तरह जब हम देखते हैं तब यह ज्ञात होता हैं की भारतीय छोटे कामगार वर्ग को दर्शाता है सामान्य जन जीवन के प्रति सहानुभूति श्रम और आत्म सम्मान उनके चित्रों में दिखाई देता है।

4. 'टू मैन इन बनारस' (1982)

यह चित्र भूपेन खक्खर के समलैंगिकता विषयक चित्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें दो पुरुषों को बनारस घाट के निकट पूर्ण नग्न चित्रित किया गया हैं जो कि दो व्यक्तिओं के बीच निकटता और आत्मीयता का चित्रण है। दोनों पुरुषों को उत्तेजित व प्रेमा अवस्था में एक दुसरे को आलिंगन में भरते हुए बोल्ड दिखाया हैं जबकि इस चित्र के संयोजन में कई छोटे छोटे द्रश्य अंकित हैं जिसमे घाट की अन्य गतिविधयां चित्रित हैं जो दर्शाती हैं घाट की सचाई और निर्भीकता को दिखाती हैं इस चित्र में भारतीय कला में कामुकता और प्रेम की अभिव्यक्ति को नए आयाम में दिखाया गया है। चित्र में उज्ज्वल रंगों का प्रयोग किया गया हैं समाज के विरुद्ध मानवीय भावनाओं को बड़ी सचाई के साथ चित्रित किया गया हैं।

5. 'लाल किले के पास श्री शंकरभाई वी. पटेल का चित्र' (1971)

यह चित्र एक व्यापारी का प्रतीकात्मक चित्र है, जो दिल्ली के लाल किले के पास खड़ा है। इसमें भारतीय नागरिक की आत्मविश्वासी साधारण छवि दिखती है। व्यक्ति और स्मारक (लाल किला) के बीच संबंध से 'राष्ट्रीयता' और 'पहचान' की चर्चा को केंद दिखाई देता हैं साथ ही पारंपरिक चित्रांकन में आधुनिक तथ्य का झलक पड़ती हैं।

6. डी–लक्स टेलर्स (1972)

यह चित्र उनके प्रारंभिक 'Narrative Paintings' काल का उदाहरण है। इसमें एक दर्जी की दुकान का दृश्य है दीवार पर सिलाई मशीन से सिले कपड़े हेंगर पर दिखाई देते हैं, और ग्राहक को भी चित्रित कियाहैं। अर्थ साधारण जन जीवन की गरिमा दिखाना रहा होगा

भारतीय शहरी मजदूर वर्ग के ईमानदार मेहनती व्यक्तिओ को चित्रित करना उनकी संवेदना का एक हिस्सा था जो उनको सामजिक स्तर से उनसे जोड़ता था। लोक दृश्य और कथानक शैली का सुंदर मिश्रण उनकी कला की मुख्य पहचान रही हैं ।

7. 'फैक्ट्री वर्कर' (1979)

इस चित्र में शहरी मजदूरों की थकान और जीवन संघर्ष को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत कर खक्खर का उनके प्रति अपार प्रेम स्नेह दिखाई देता है। खक्खर का उद्देश्य यहा भी रहा की आम आदमी की कहानी वह अपने तुलिका से कह सके है शरीर की सशक्त रेखाएं आकृति पर झलकता श्रम स्पष्ट करती हैं आधुनिक जीवन की कितनी कठोरता हैं मानव जीवन में जिसे भूपेन दिखाना चाहते थे मानवीय संवेदना और करुणा इस चित्र में स्पष्ट सिखाई देती हैं।

8. 'डेथ इन द फैमिली' (1979)

यह चित्र खक्खर की भावनात्मक गहराई को प्रकट करता है। इसमें परिवार में किसी सदस्य की मृत्यु का दृश्य है जिसमे परिवार के सदस्य और समाज के लोग शोक में डूबे हैं, पर जीवन अपनी गति में चलता रहता है इसे स्थिर नहीं किया जा सकता जीवन और मृत्यु की द्वंद्वात्मक खेल सभी पर भरी हैं। इस चित्र में मानवीय संवेदना की गहराई हृदय को चोटिल करती हैं जिसमे भारतीय परिवार को एक ढाँचे में देखकर भावनात्मकता जग जाती हैं।

चित्रों में मानवीय संवेदना

उन्होंने एक ही दृश्य में जीवन के विभिन्न पहलुओं और मानवीय अपेक्षाओं के बोझ को चित्रित किया, जो यह बताता है कि हर किसी को खुश करना असंभव है। इस तरह के चित्रों के माध्यम से, उन्होंने मानवीय संबंधों की जटिलता, सामाजिक दबावों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच के तनाव को उजागर किया। रंगों का पैलेट और भावनात्मक प्रभाव दिखाई डेटा हैं खक्खर ने अपने चित्रों में

रंगों के बोल्ड पैलेट (bold palette) का उपयोग किया। उनके जीवंत रंग, अक्सर चमकीले और स्पष्ट, पहली नजर में खुशी और उल्लास का अहसास कराते हैं। हालांकि, इन रंगों के पीछे छिपे विषय अक्सर गहरे और चिंतनशील होते थे। यह विरोधाभास ही उनकी कला की विशेषता हैं। रंगों का उनका उपयोग केवल सौंदर्यशास्त्र के लिए नहीं था, बल्कि भावनात्मक प्रभाव पैदा करने के लिए था। उन्होंने रंगों और रेखाओं को इस तरह संयोजित किया कि वे मानवीय भावनाओं, चाहे वह प्रेम हो, अकेलापन हो, या पीड़ा हो, को प्रभावी ढंग से व्यक्त कर सकें। उनकी कला आज भी दर्शकों से यही प्रश्न पूछती है क्या हम दूसरों की पीड़ा, प्रेम और अस्तित्व को देखने की संवेदना रखते हैं? भूपेन खक्खर की कला की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मानवीय संवेदना है। यह संवेदना उनके चित्रों में अनेक स्तरों पर व्यक्त होती है।

सामाजिक और भावनात्मक दृष्टिकोण

खक्खर समाज के "हाशिए" पर खड़े व्यक्ति को केंद्र में लाते हैं। उनके चित्रों में दफ्तर के छोटे कर्मचारी, सामान्य व्यापारी, या सड़क के दृश्य मानवीय गरिमा के साथ जीवंत होते हैं। वे वर्गीय या धार्मिक भेदभाव को कभी प्रत्यक्ष रूप में नहीं चित्रित करते, बल्कि उनकी पृष्ठभूमि में यह अन्याय स्वतः झलक उठता है। उदाहरण के लिए, 'दर्जी की दुकान' में पृष्ठभूमि के चमकीले रंग एक सकारात्मक ऊर्जा देते हैं यह उस वर्ग के आत्मविश्वास का प्रतीक है जो समाज में अक्सर उपेक्षित रहता है। उनकी कला का भावात्मक पक्ष इन पात्रों की सरलता में छिपा है। वे नाटकीय नहीं, बल्कि जीवन–स्पर्शी हैं। आत्मस्वीकार और लैंगिक पहचान की संवेदना भूपेन खक्खर भारत के पहले ऐसे कलाकारों में से थे जिन्होंने अपनी समलैंगिक पहचान को खुले रूप में स्वीकार किया और उसे कला में संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया। उनकी रचना "बनारस में दो आदमी" (1982) प्रेम की इस नई परिभाषा का उदाहरण है दो पुरुष एक साथ बैठे हैं, नदी की पृष्ठभूमि में। यहाँ प्रेम न किसी शर्म में है, न किसी अपराध–बोध में यह एक आत्मीय, गरिमापूर्ण, और आध्यात्मिक अनुभूति है। यह चित्र उस समय भारतीय समाज में यौनिक विविधता पर मौन तोड़ने वाला साबित हुआ। खक्खर की इस ईमानदारी ने उनकी कला को गहन मानवीय स्तर पर प्रामाणिक बना दिया।

निष्कर्ष

भूपेन खक्खर ने भारतीय समकालीन कला को मानवीय संवेदना, यथार्थ और व्यक्तिगत साहस का नये आयाम में प्रस्तुत किया उन्होंने पश्चिमी प्रभावों को भारतीय लोक परंपरा और सामाजिक तथ्य के साथ समाहित कर एक विशिष्ट शैली विकसित की, उनके चित्र आज भी सामाजिक पहचान, लैंगिकता, और व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रतीक हैं। भारतीय समकालीन कला में खक्खर का स्थान स्वतंत्रता के बाद भारतीय कला दो धाराओं में विभक्त दिखाई देता हैं। एक ओर अमूर्तता की पश्चिमी शैली से प्रेरित दिशा थी, और दूसरी ओर भारतीय विषय वस्तु और लोक शैली की खोज, भूपेन खक्खर ने इन दोनों के बीच से एक तीसरा मार्ग निकाला मानव केंद्रित आधुनिकता जो इन दोनों से कही ना कही बढकर थी उनकी कला में न तो अमूर्त प्रतीकवाद है, न पारंपरिक धार्मिकता वे आधुनिक जीवन के साधारण पात्रों को इस तरह चित्रित करते हैं कि वे हर दर्शक के जीवन से जुड़ जाएँ। इस दृष्टि से खक्खर भारतीय समकालीन कला में एक मानवीय यथार्थवादी कलाकार के रूप में देखे जा सकते हैं। भूपेन खक्खर की चित्रकला आधुनिक भारतीय कला का एक ऐसा अध्याय है जिसने मनुष्य की आत्मा को केंद्र में रखा उन्होंने यह दिखाया कि कला केवल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समझ और सहानुभूति का माध्यम है। उनकी कला में हम देखते हैं सामाजिक यथार्थ की सादगी, प्रेम की ईमानदारी, और आत्मस्वीकार की गरिमा दिखाई देती हैं। उन्होंने कहा था "मुझे मनुष्य में सबसे अधिक दिलचस्पी है उसकी कमजोरियों, उसकी हंसी, और उसकी करुणा में।" भूपेन खक्खर का यह कथन उनकी समूची कला का सार है। उनकी मानवीय संवेदना हमें याद दिलाती है कि आधुनिकता की सच्ची पहचान तकनीकी नहीं, बल्कि मानवता की पुनर्खोज में है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. ममता चतुर्वेदी (2022) "समकालीन भारतीय कला"प्रकाशन : राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी,12 वां संस्करण, पृष्ट 154,155,156.
2. राकेश गोस्वामी (2024) "भारतीय आधुनिक एवं समकालीन कलाकार" प्रकाशन : गोस्वामी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्री ब्यूटर प्रयागराज, पृष्ट संख्या 98,99,100,101,102
3. डॉ. रीता प्रताप (2016) "भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास" प्रकाशन : राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी. 21 वां संस्करण पृष्ट संख्या 399,400

- Kapur, Geeta. When Was Modernism: Essays on Contemporary Cultural Practice in India. Tulika Books, 2000.
- Appasamy, Jaya. The Art of India: Modern and Contemporary. Viking Press, 1985.
- Jhaveri, Shanay. Bhupen Khakhar: You Can't Please All. Tate Publishing, 2016.
- Subramanyan, K. G. The Living Tradition: Perspectives on Modern Indian Art. Seagull Books, 1987.
- Mallet, Sally and Khakhar, Bhupen. Bhupen Khakhar: Recent Paintings. Chemould Publications, 1995.
- Kapur, Gayatri Sinha (ed.). Indian Contemporary Art: Post Independence. Vadehra Art Gallery, 2002.
- Baroda Museum Archives. Baroda Group: Catalogue of Works 1960–1990. Baroda, 1991.
- Tate Modern Exhibition Catalogue. Bhupen Khakhar: You Can't Please All. London, 2016.
- Lalit Kala Akademi. Contemporary Indian Artists. New Delhi, 1998.
- Geeta Kapur, When Was Modernism: Essays on Contemporary Cultural Practice in India, Tulika Books, 2000.
- Ranjit Hoskote, Bhupen Khakhar: A Retrospective, National Gallery of Modern Art, 2003.
- Gulammohammed Sheikh (Ed.), Bhupen Khakhar: You Can't Please All, Tate Modern, 2016.
- Partha Mitter, Indian Art, Oxford University Press, 2001.
- Yashodhara Dalmia, Indian Contemporary Art: Post-Independence Era, Vadehra Art Gallery, 2010.
- Nancy Adajania, New Mediations: Bhupen Khakhar and Indian Narrative Painting, Art Journal of India, 2004.
- R. Siva Kumar, Contemporary Indian Artists, Lalit Kala Akademi, 1998.
- Citron, B. (2012). "Bhupen Khakhar's "Pop" in India, 1970-72". Art Journal, 71(2), 44-61.
- Desai, Mahendra; Bhupen Khakhar (1983). A Man Labelled Bhupen Khakhar Branded As Painter. Bombay: Identity People.
- Kapur, Geeta (1978). "View from the Teashop: Bhupen Khakhar". In Contemporary Indian Artists. New Delhi: Vikas Publications.
- Kapur, Geeta (2002). "Bhupen Khakhar". Catalogue essay in Bhupen Khakhar. Madrid: Museo Nacional Centro de Arte Reina Sofia, pp. 26-48.
- Rushdie, Salman (1989). Two Stories, with etchings by Bhupen Khakhar. London: Privately printed.
- Sheikh, Gulammohammed (ed.) (1997). Contemporary Art in Baroda. New Delhi: Tulika.
- Vadehra Art Gallery (1997). Indian Contemporary Art Post Independence (Excerpt, pg. 172). New Delhi: Vadehra Art Gallery.

बुंदेलखंड की लोक चित्रकला पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव

शोधार्थी –
काजल
ललित कला संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

सारांश

बुंदेलखंड, जो मध्य भारत के लिए ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यहां की भौगोलिक परिस्थितियाँ चित्रकला की शैलियों, रंगों और विषयों को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। यह क्षेत्र जिसकी जलवायु मुख्य रूप से शुष्क और उष्ण है, प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार अपनी चित्रकला में विशिष्टता को दर्शाता है।

बुंदेलखंड की चित्रकला में प्राकृतिक तत्वों का प्रमुख स्थान है। यहां की भूमि वनस्पति जल और पर्वत चित्रों में प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का असर न केवल चित्रकला के रूपों पर होता है बल्कि रंगों के चयन पर भी गहरा प्रभाव डालता है। इसके अलावा बुंदेलखंड की ऐतिहासिक घटनाएँ जैसे संघर्ष, युद्ध और सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों का चित्रकला पर गहरा असर पड़ा है।

द्वितीयक स्रोतों पर आधारित यह शोधपत्रलोक कला की स्थिरता और सांस्कृतिक संरक्षण पर जोर देता है। इस पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि कैसे भौगोलिक कारककृजैसे शुष्क जलवायु, ऊबड़–खाबड़ इलाका और प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धताकृलोक चित्रकला के तत्वों को प्रभावित करते हैं। बुंदेलखंड की लोक चित्रकला पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव शीर्षक पर यह शोधपत्र बुंदेलखंड क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति के चित्रकला पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तार से विश्लेषण करता है। बुंदेलखंड की ऐतिहासिक वास्तुकला और सांस्कृतिक धरोहर ने चित्रकला की शैलियों और विषयों को कैसे प्रभावित किया।

मुख्यशब्द

बुंदेलखंड, भौगोलिक परिस्थिति, चित्रकला, प्राकृतिक संसाधन, जलवायु, रंगशैली, ऐतिहासिक घटनाएँ, लोककला, सांस्कृतिक धरोहर, स्थानीय पहचान।

साहित्य समीक्षा

बुंदेलखंड की लोक संस्कृति पर कई अध्ययन उपलब्ध हैं, जो भौगोलिक

प्रभाव को रेखांकित करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार, क्षेत्र की शुष्क जलवायु और ऊबड़—खाबड़ पठार ने लोक गीतों और नृत्यों को जन्म दिया है, जो जल की कमी और वर्षा की आशा से जुड़े हैं। इसी प्रकार,मध्य प्रदेश की लोक कला में प्राकृतिक रंगों का उपयोग क्षेत्रीय पारिस्थितिकी से प्रभावित होता है। बुंदेलखंड की शुष्क भूमि ओखर (ओचर), रेतीले पीले और मंद रंगों को प्रेरित करती है, जो ऊबड़—खाबड़ इलाके को प्रतिबिंबित करते हैं।

प्रागैतिहासिक गुफा चित्र, जैसे सागर जिले के बारोदा गाँव के पास पाए गए, शिकारियों, जानवरों और नृत्यों को दर्शाते हैं, जो गेरू रंग से बने हैं— एक प्राकृतिक खनिज जो क्षेत्र की मिट्टी से प्राप्त होता है। ये चित्र मानव—प्रकृति के संबंध को दिखाते हैं, जो भौगोलिक परिस्थितियों से आकार लेते हैं। आधुनिक संदर्भ में, लोक चित्रकला दीवार सज्जा (जैसे नाग पंचमी पर गोबर और मिट्टी से बने चित्र) और फर्श अलंकरण (रंगोली में हल्दी और सिंदूर का उपयोग) में जारी है।

अन्य स्रोतों से पता चलता है कि बुंदेलखंड की नदियाँ, जैसे बेतवा और केन, लोककथाओं में पवित्र हैं और चित्रकला के रूपांकनों में शामिल हैं, जो जल संरक्षण की परंपराओं को प्रतिबिंबित करती हैं।कुल मिलाकर, साहित्य से स्पष्ट है कि भौगोलिक कारक लोक कला को केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि अस्तित्व का माध्यम बनाते हैं।

विधि

यह शोध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें ऑनलाइन उपलब्ध लेख, शोध पत्र और पुस्तकें शामिल हैं। भौगोलिक प्रभाव की जांच के लिए कीवर्ड सर्च जैसे ''बुंदेलखंड लोक चित्रकला भौगोलिक प्रभाव'' का उपयोग किया गया। डेटा का विश्लेषण विषयगत रूप से किया गया, जिसमें रंग, सामग्री, रूपांकन और सांस्कृतिक महत्व पर फोकस रहा। कोई प्राथमिक सर्वेक्षण नहीं किया गया, क्योंकि अध्ययन सैद्धांतिक है।

प्रस्तावना

बुंदेलखंड, मध्य भारत का एक पठारी क्षेत्र, अपनी अनोखी लोक संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में विंध्य पठार, उत्तर–पश्चिम में चंबल और दक्षिण–पूर्व में पन्ना–अजयगढ़ श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है।बुंदेलखंड भारत का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से परिपूर्ण ऐसा समृद्ध क्षेत्र है जो मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग में फैला हुआ है। यहाँ की लोक चित्रकला न केवल जनजीवन की भावनाओं और परंपराओं का चित्रण करती है। बल्कि यह क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों जैसे जलवायु, स्थलाकृति, मिट्टी, वनस्पति और उपलब्ध प्राकृतिक रंगों से भी गहराई से प्रभावित है। यहां के कलाकार सूखे और गर्म वातावरण को ध्यान में रखते हुए गहरे और उष्ण रंगों का उपयोग करते हैं जो इस क्षेत्र के पर्यावरणीय चरित्र को प्रतिबिंबित करते हैं। कलाकारों ने इन घटनाओं को अपनी कला के माध्यम से व्यक्त किया जिससे चित्रकला में प्रतीकात्मक और दृश्यात्मक तत्वों की प्रधानता बढ़ी है। चित्रकला के माध्यम से बुंदेलखंड की लोककला, धार्मिक विश्वास और क्षेत्रीय पहचान को प्रदर्शित किया गया। लोक चित्रकला, जो दीवारों, फर्शों और शरीर पर की जाती है, प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों से विकसित हुई है और दैनिक जीवन, प्रकृति तथा धार्मिक विश्वासों को दर्शाती है।

बुंदेलखंड की लोककला भारतीय सांस्कृतिक विविधता में विशिष्ट स्थान रखती है। जिसमें कलात्मक अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप जैसे चित्रकारी,मूर्तिकला,लोकगीत,नाट्य,शिल्प और आंचलिक संस्कार सम्मिलित हैं।बुंदेली लोककलाओं का उद्‌भव प्रागैतिहासिक युग से माना जाता है। जिसमें वैदिक,रामायण,महाभारत और महाजनपद काल की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। नाग–वाकाटक तथा चंदेल शासकों के शासनकाल में इन कलाओं को संहिताबद्ध स्वरूप मिला। इन कलाओं में स्थानीय धार्मिक परंपराओंलोक विश्वासों और सामाजिक घटनाओं की झलक मिलती है।

बुंदेली लोकचित्रकला और बुंदेलखंड की भौगोलिक दशाएं

बुंदेली लोकचित्रकला पर बुंदेलखंड की भौगोलिक दशाओं का प्रभाव अत्यंत गहरा रहा है। भौगोलिक संरचना और जलवायु का प्रभावबुंदेलखंड की भौगोलिक संरचना में पठारी भूमि,छोटी पहाड़ियाँ, अवसादी घाटियाँ और कठोर चट्टानों का प्रभुत्व है। यहाँ की जलवायु उष्णअर्ध–शुष्क और मानसूनी हैजहाँ

गर्मियाँ अत्यंत कठोर एवं वर्षा अनिश्चित रहती है। इससे यहाँ के लोग, उनकी रोजमर्रा की जीवनशैली, वास्तुकला, त्योहार, कृषि और कलात्मक अभिव्यक्ति सभी प्रभावित हुए हैं।प्राकृतिक जल स्रोतों (नदियाँ कृ केन,बेतवा,यमुना) के पतले प्रवाह ने सिंचाई, पर्व, मंदिरों एवं घाटों के स्थापत्य एवं उनसे जुड़े आंचलिक सांस्कृतिक लोकाचार पर गहरा प्रभाव डाला है।

भौगोलिक विशेषताएँ और उनका प्रभाव

बुंदेलखंड की ऊबड़–खाबड़ पठार, कम वर्षा और मौसमी नदियाँ लोक चित्रकला को कई तरीकों से प्रभावित करती हैं।

रंग पैलेट : शुष्क इलाके ओचर, पीले और मंद रंगों को बढ़ावा देते हैं। उदाहरण के लिए, गेरू (लाल ओचर) क्षेत्र की मिट्टी से प्राप्त होता है और प्रागैतिहासिक चित्रों में प्रमुख है। विपरीत रूप से, वन क्षेत्र हरे और भूरे रंग प्रदान करते हैं, जो वनस्पतियों से निकाले जाते हैं।

सामग्रियाँ : कलाकार प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग करते हैं, जैसे हल्दी (पीला), नीम (हरा), इंडिगो (नीला) और चारकोल (काला)। ये सामग्रियाँ क्षेत्र की पारिस्थितिकी से जुड़ी हैं और टिकाऊ हैं।गोबर और मिट्टी से बनी दीवार चित्रकलाएँ जलवायु की कठोरता के अनुकूल हैं।

रूपांकन : चित्रों में सूर्य, चंद्रमा, पर्वत, नदियाँ, जानवर और दैनिक जीवन के दृश्य प्रमुख हैं, जो क्षेत्र की भौगोलिक वास्तविकता को दर्शाते हैं। प्रागैतिहासिक चित्र शिकार और नृत्य दिखाते हैं, जो पहाड़ी इलाकों से प्रेरित हैं।

सांस्कृतिक महत्व : कला जलवायु की चुनौतियों से मुकाबला करने का माध्यम है, जैसे सूखे पर गीत और चित्र ।त्योहारों जैसे होली में प्राकृतिक रंगों का उपयोग मौसमी चक्रों से जुड़ा है।

लोककला–रूपों में भौगोलिक प्रभाव चित्रकारी और भित्तिचित्र

यहाँ की कठोर मिट्टी, लाल–पिली मुरम, पत्थर और मिट्टी का संयोजन, चितेरी चित्रकला में दिखता है,जहाँ स्थानीय रंग और साधनों का उपयोग दीवारों पर देवी–देवताओं, पशु–पक्षियों और पर्व–त्योहारों के दृश्य उकेरने में होता है। वनस्पति,उपलब्ध संसाधन औरयहाँ की सूखी पर्णपाती वनस्पति कृनीम, बबूल, पलाश, सलाई, आंवला–रंग, औजार और पारंपरिक रचनाओं में प्रयुक्त होती रही है। सांस्कृतिक अनुकूलन और विरासत जल का संकट, भूमि की कठोरता,और बार–बार पड़ने वाला सूखा– इनकी वजह से बुंदेलखंडी समाज में जल–संरक्षण, सहकार और साझा श्रम के लिए कई सांस्कृतिक परंपराएँ व लोककला रूप विकसित हुएरू कुँए, बावडियाँ, तालाब, लोकदेवता और उनसे जुड़ी कथा–कहानियाँ। पर्व–त्योहारों, संस्कारों और चित्रकला में ऋतुचक्र, प्रकृतिव वर्षा की प्रार्थना/वंदना प्रमुख विषय रहते हैं।

चितेरी चित्रकला

चितेरीकला बुंदेलखंड की एक प्राचीन लोक चित्रकला शैली है, जिसमें दीवारों, आँगन, द्वार और त्योहारों पर बनाए जाने वाले चित्र शामिल हैं। यह कला ग्रामीण महिलाओं द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाई जाती है। इसमें प्राकृतिक रंगों, सरल रेखाओं और स्थानीय प्रतीकों का प्रयोग होता है।

चितेरी बुंदेलखंड की विशिष्ट दीवार चित्रकला है, जिसमें मिट्टी की दीवारों पर प्राकृतिक रंगों से ग्रामीण जीवनदेवी– देवताओं, त्योहारों या सामाजिक घटनाओं का अंकन किया जाता है। चित्ररी कलाकृति में पहले आकृति को रंगों से बनाया जाता है, फिर उसकी बाहरी रेखाएं काली रंग से उकेरी जाती हैं, जो इसे अन्य लोककलाओं से अलग बनाती हैं।चितेरी कला बुंदेलखंड की एक जीवित परंपरा है जो स्थानीय भूगोल, सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक विश्वासों से गहराई से प्रभावित है। इस शोध में चितेरी कला की तकनीक, सामग्री, विषय–वस्तु और आधुनिक परिवर्तनों का विश्लेषण किया गया है।आज यह कला धीरे–धीरे लुप्त हो रही है, पर कुछ क्षेत्रों में इसे पुनर्जीवित करने के प्रयास हो रहे हैं। कई NGO और कला संस्थान चितेरी कलाकारों को मंच प्रदान कर रहे हैं।

पिछवाई एवं तांत्रिक चित्रकला

यह प्रधानतः कृष्ण भक्तिमार्ग एवं हिन्दू मिथक को विषयवस्तु के रूप में लेती है,जिसमें कपड़े या कागज पर जटिल डिजाइन और चमकीले रंगों में चित्रण होता है।

निष्कर्ष

बुंदेली लोककला और उसकी विविधताओं को गढ़ने में बुंदेलखंड की भौगोलिक स्थितियाँ– पठारीपन, चट्टानी भूमि, जलवायु की अनिश्चितता, वन संपदा, खनिज संसाधन का बहुआयामी प्रभाव रहा है। ये कारक वहाँ के जीवन के प्रत्येक अंग में, विशेषतः उसकी कला, स्थापत्य, संगीत व लोकसंस्कारों में गहराई से झलकते हैं।

बुंदेलखंड की लोक चित्रकला भौगोलिक परिस्थितियों का जीवंत प्रतिबिंब है, जो कठोर पर्यावरण में लचीलापन और रचनात्मकता दिखाती है। यह कला न केवल सांस्कृतिक विरासत है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण का साधन भी। भविष्य में, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए अनुसंधान और संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता है।

बुंदेली लोककलाएँ क्षेत्रीय पहचान,सामाजिक एकता और सांस्कृतिक धरोहर के वाहक हैं। इनके संरक्षण के लिए कई संस्थान जैसे आदिवासी लोक कला अकादमी, बुंदेली लोक नृत्य नाट्य कला परिषद और जनजातीय संग्रहालय एजेंसियाँ सक्रिय हैं। आधुनिक समय में इन कलाओं का प्रयोग न केवल धार्मिक या सामाजिक अवसरों पर, बल्कि स्वास्थ्य जागरूकता, पर्यावरण और समसामयिक मुद्दों के प्रचार में भी किया जाने लगा है।

संदर्भ

- A- K- (2014)- Vartaman ke aaine mein Bundeli lok kala- Apni Maati: Sahitya & Sanskriti ki Samajik E&Patrika] 2 (15)] July–September 2014- ISSN 2322&0724
- Bharti] J- K- (2020)- A social and cultural overview of Bundeli folklore- The Creative Launcher]5 (1)]April2020-
- Rastogi] T-] Munjal] K-] & Thakuriya] K- (2023)- Environmental heritage in hues: Traditional natural colors in Madhya Pradesh folk art- Journal of Research Trends in Development and Design (JRTDD)] 6 (1)] 1430–1441-
- Sharma] M- (2018)- Bhartiya lok kala ka itihas- Gyanpeeth Prakashan-
- Singh] K- (2020)- Bundelkhand ki lok kalayen- Bharatiya Lok Kala Academy-
- Tiwari] R- (2016)- Madhya Bharat ki chitr paramparayen- Lok Sanskriti Prakashan.

हिन्दू धर्म की प्रकृति और उसकी प्रजातांत्रिक व पर्यावरणीय स्वरूप

डॉ. राजेश कुमार
प्रोफेसर– इतिहास विभाग
राजकीय महाविद्यालय, रूधौली, बस्ती

हिंदू धर्म को अन्य धर्मों से अलग करने वाली मूलभूत विशेषताओं में से एक इसकी प्रत्येक आत्मा की दिव्यता का दावा है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में, 'प्रत्येक आत्मा संभावित रूप से दिव्य है, लक्ष्य अपने भीतर दिव्यता की अनुभूति करना है।' वास्तव में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हिंदू परंपरा में प्रकृति की हर चीज दैवीय है। हालांकि, यह सच है कि जबकि सभी प्राणी और सभी चीजें भी दिव्य हैं, केवल मनुष्य ही अपने दिव्य स्वभाव को महसूस करने या अनुभव करने में सक्षम हैं। किसी भी दर पर, हिंदू धर्म का दावा है कि प्रकृति में सभी वस्तुएं समान पैदा होती हैं। दूसरे शब्दों में, हिंदू धर्म आध्यात्मिक लोकतंत्र का अवतार है।

महात्मा गांधी को एक बार तुलनात्मक धर्मशास्त्र के एक अमेरिकी प्रोफेसर ने हिंदू धर्म के प्रमुख मूल्य को संक्षेप में बताने के लिए कहा था। गांधी ने उत्तर दिया कि हिंदू धर्म का मुख्य मूल्य यह मानने में निहित है कि 'सभी जीवन (न केवल मनुष्य, बल्कि सभी संवेदनशील प्राणी) एक हैं, अर्थात सभी जीवन एक सार्वभौमिक स्रोत से आ रहे हैं।' उन्होंने आगे कहा कि सिद्धांत रूप में यह नहीं था मनुष्य को प्रकृति पर हावी होने या उसका शोषण करने के लिए दिया गया है, लेकिन हमारे पारस्परिक कल्याण को बढ़ाने और बढ़ाने के लिए इसके साथ सहयोग करें।

हिंदू धर्म की मूल प्रकृति

हिंदू धर्म, अन्य महान धर्मों के विपरीत, कोई संस्थापक नहीं था और कोई संगठित चर्च नहीं था। हिंदुओं के सभी धर्मग्रंथ भारतीय इतिहास के पिछले हजारों वर्षों के दौरान सैकड़ों संतों, जिन्हें ऋषि कहा जाता है, के लिए प्रकट किए गए दिव्य ज्ञान का परिणाम है, और बाद में अन्य ऋषियों और ऋषियों द्वारा संकलित किया गया जब लेखन माध्यम उपलब्ध हो गया। इस तरह के एक अजीबोगरीब इतिहास के परिणामस्वरूप, हर किसी पर लागू करने के लिए कोई निर्धारित सिद्धांत नहीं हैं, और लोगों को अपनी खुद की पूजा पद्धति चुनने, अपना दर्शन बनाने और योग की अपनी प्रणाली का अभ्यास करने की स्वतंत्रता है।

इससे हिंदू धर्म में असंख्य संप्रदायों का निर्माण हुआ है। लेकिन ये सभी संप्रदाय वेदों से अपनी प्रेरणा प्राप्त करने का दावा करते हैं। सबसे बढ़कर, ये सभी संप्रदाय एक दूसरे के साथ शांति और सद्भाव में रहते हैं।

हिंदू धर्म कई देवताओं की पूजा और अर्चना करता है। अनेक देवी–देवताओं की इस स्वीकृति के बावजूद, हिंदू धर्म बहुदेववादी नहीं है। ऋग्वेद के रूप में, दुनिया का सबसे प्राचीन ग्रंथ, घोषणा करता है– एकम सत विप्र बहुदा वदंती, जिसका अर्थ है कि ईश्वर एक है, संत उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। जोसेफ कैंपबेल के शब्दों में, ऐसा लगता है जैसे एक ईश्वर इतने सारे मुखौटे पहनता है। इसके अलावा, हिंदू धर्म में ईश्वर के चुने हुए आदर्श या रूप इष्ट की अवधारणा है। कुछ हिंदू विष्णु और उनके अवतार के पीछे की पौराणिक कथाओं से बहुत अधिक आकर्षित होते हैं, जबकि शिव दूसरों को आकर्षित करते हैं। भारत में भी देवी के काफी अनुयायी हैं। एक हिंदू के लिए, एक देवी या देवता की पूजा पसंद और आध्यात्मिक झुकाव का मामला है।

चूँकि ईश्वर को यहूदी–ईसाई और इस्लामी परंपराओं में पिता के रूप में देखा जाता है, पश्चिम में ईश्वर शब्द किसी तरह मानव मन में एक पुरुष रूप से प्रकट करता है। परिणाम यह हुआ कि उसके कथित 'पुरुषत्व' ने मानवीय प्रवृत्तियों और गतिविधियों को प्रबल और प्रेरित किया है, और पुरुष–प्रभुत्व को एक प्रकार की दैवीय स्वीकृति प्रदान की है। जैसा कि मैरी डैली ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक बियॉन्ड गॉड द फादर में इंगित किया है, 'यदि ईश्वर पुरुष है, तो पुरुष ईश्वर है।'

इसके विपरीत हिन्दू धर्म में ईश्वर के 'पुरुषत्व' का ऐसा कोई सुझाव नहीं है। यहां तक कि जब सर्वोच्च देवता विष्णु या शिव की तरह पुरुष होते हैं, तब भी देवी लक्ष्मी या पार्वती के रूप में उनके साथ–साथ प्रकट होती हैं। शक्ति शक्ति या ऊर्जा के लिए खड़ा है। शक्ति भी देवी का सामान्य नाम है। यह पुरुषों और महिलाओं के बीच आध्यात्मिक समानता के लिए एक तर्क प्रदान करता है जो आध्यात्मिक लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

हिंदू धर्म किसी की भी केवल इसलिए निंदा नहीं करता है क्योंकि वह नास्तिक या मानवतावादी है। जैसा कि एरिक फ्रॉम कहते हैं कि ईसाई धर्म और इस्लाम के विपरीत, हिंदू धर्म सहित पूर्वी धर्मों में जोर सही विचार या विश्वास पर नहीं बल्कि सही कार्रवाई पर है। इसीलिए हिंदू परंपरा में नास्तिक और मानवतावादी, हालांकि किसी भी ईश्वर में विश्वास नहीं करते हैं, उन्हें बहुत

सम्मान दिया जाता है, बशर्ते उनके कार्य मानवता के कल्याण के अनुकूल हों। इसी तरह, हिंदू संतों और अन्य धर्मों के महान व्यक्तित्वों के प्रति बहुत श्रद्धा रखते हैं। क्योंकि, उनका मानना है कि एक पवित्र कंपनी, चाहे वह किसी भी धर्म से जुड़ी हो, ईश्वर को साकार करने में बहुत सहायक होती है।

वेदांत : हिंदू धर्म का मूल आधार

हिंदू धर्म का यह लोकतांत्रिक लोकाचार इसके वेदांत दर्शन में बहुत अच्छी तरह से स्थापित है। संस्कृत में दर्शन को दर्शन कहा जाता है, जिसका अर्थ है देखना या प्रत्यक्ष बोध। पश्चिमी दर्शन के विपरीत, जो एक काल्पनिक अनुशासन है, भारतीय दर्शन एक सत्य की खोज का अभ्यास है, जो खुद को तर्कपूर्ण तर्क तक सीमित नहीं रखता है, बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह प्रत्यक्ष धारणा और सहज ज्ञान पर निर्भर करता है। बुद्धि के लिए, हिंदू धर्म में धर्म विश्वास का नहीं बल्कि अनुभव का विषय है। कोई बनारस के बारे में पढ़ या सुन सकता है, लेकिन जब तक कोई उसे देख नहीं लेता, तब तक कोई सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। साथ ही वेदांत की कोई भी बात तर्क से खण्डित नहीं है।

वेदांत परम सत्य को ब्रह्म कहता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है सब। तो सब कुछ और हर कोई, आप और मैं, ब्रह्म हैं। ब्रह्म अदृश्य, अनंत और अविभाज्य है, और हर चीज में व्याप्त है; यह सर्वोत्कृष्ट है और प्रत्येक वस्तु में व्याप्त भी है– आप में और मुझमें। ब्रह्म को संस्कृत में आत्मा अथवा आत्मान् कहा जाता है। वेदांत यह भी दावा करता है कि मनुष्य सहित हर चीज का सार, यह आत्मान या स्वयं या आत्मा है, जो शुद्ध, पूर्ण और अमर है। मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं।

बेशक, वेदांत छह दार्शनिक विषयों में से केवल एक है। लेकिन ये सभी वेदों से अपना अधिकार प्राप्त करते हैं, और ये सभी आपस में इतने गुंथे हुए हैं कि इन्हें छह निर्विवाद डिब्बों में अलग करना मुश्किल है। फिर से वेदांत स्वयं एक अखंड अनुशासन नहीं है। वेदांत के अंतर्गत मोटे तौर पर तीन विषय हैं: द्वैतवाद, योग्य गैर–द्वैतवाद, और गैर–द्वैतवाद या अद्वैतवाद। स्थान की कमी के कारण हम अपने आप को केवल उत्तरार्द्ध तक ही सीमित रखेंगे, हालांकि यहां हमें फिर से यह इंगित करने की आवश्यकता है कि सभी दार्शनिक विषयों को बहुत सम्मान दिया जाता है।

गैर–द्वैतवादी वेदांत के अनुसार, ब्रह्म और स्वयं (आत्मान) समान हैं। जबकि हमारी इंद्रियां और मन प्रकृति में अंतर पाते हैं, आध्यात्मिक या आत्म–ज्ञान के माध्यम से हम ऐसे मतभेदों के पीछे एकता के प्रति जागरूक हो

जाते हैं। वह एकता, निस्संदेह, ब्रह्म है।

उपनिषदों में ब्रह्म को अस्तित्व, चेतना और पूर्ण आनंद की प्रकृति के रूप में वर्णित किया गया है। इस पूरी सृष्टि की कल्पना अनंत जल के एक महासागर के रूप में करें जिसके गुण अस्तित्व, चेतना और परम आनंद हैं। यह भी कल्पना कीजिए कि हम सब, और अन्य प्राणी तरंगें हैं, कुछ छोटी तरंगें हैं और अन्य बड़ी हैं। लेकिन लहरों की ऊंचाई और लंबाई की परवाह किए बिना, सभी पानी के अलावा और कुछ नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, नाम और रूप की विविधता के पीछे एकता है, जैसे कि विभिन्न मुखौटे, पुरुष या महिला, पशु या पौधे, ग्रह, महासागर, आदि पहने हुए हैं।

भगवद–गीता में भी हमारे पास अनंत वास्तविकता का एक ही विचार है जो हर चीज में निहित है। वहाँ श्री कृष्ण कहते हैं कि मैं अपनी शक्ति के साथ पृथ्वी में प्रवेश कर रहा हूँ, मैं सभी प्राणियों का समर्थन करता हूँ और मैं पानी का चाँद बनकर सभी जड़ी–बूटियों का पोषण करता हूँ। तो, हम देखते हैं कि केवल एक ही ऊर्जा स्रोत है, और वह वेदांत के स्वयं ईश्वर है। सब कुछ उन्हीं से निकलता है और पौधों, फूलों और फलों के विकास के रूप में प्रकट होता है। बाद में वे सभी भगवान के पास लौट आते हैं।

प्रकृति के साथ सम्मान, शोषण नहीं

चूंकि हिंदू धर्म प्रकृति की हर चीज को पवित्र मानता है, इसलिए हमें सभी वस्तुओं का सम्मान करना चाहिए और उनका शोषण नहीं करना चाहिए, जैसा कि हमारी भौतिकवादी प्रवृत्ति हमें करने के लिए प्रेरित करती है। ईशावास्य उपनिषद और कई अन्य उपनिषदों से पहले एक शांति आह्वान है, जो इस प्रकार है – वह अदृश्य (ब्रह्म) पूर्ण है; यह दृश्य (संसार) भी पूर्ण है। पूर्ण (ब्रह्म) से पूर्ण (दृश्यमान ब्रह्मांड) आया है। पूर्ण (ब्रह्म) से पूर्ण (दृश्यमान ब्रह्मांड) के बाहर आने के बाद भी पूर्ण (ब्राह्मांड) वही रहता है।"

यह शांति मंत्र एक से अधिक मामलों में महत्वपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि एकेश्वरवादी धर्मों का कोई व्यक्तिगत ईश्वर नहीं है जो इस ब्रह्मांड को शून्य से बनाता है। दूसरे स्थान पर, जिस प्रकार पारलौकिक वास्तविकता पूर्ण या परिपूर्ण है, उसी प्रकार यह संसार पूर्ण या परिपूर्ण है। इसी तरह इस दुनिया में हर चीज की पवित्रता पर जोर दिया जाता है।

इसके अलावा, जो कुछ भी पूर्ण या परिपूर्ण है वह अच्छी तरह से

संतुलित, परस्पर जुड़ा हुआ और अन्योन्याश्रित है। इस प्रकार, जबकि यह बिल्कुल ठीक है कि मनुष्य, सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ, प्रकृति के अन्य भागों से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करे और उन्हें अपनी उच्च बुद्धि और ज्ञान का उपयोग उनका शोषण करने के लिए नहीं करना चाहिए। इसका मतलब यह है कि हमने जो कुछ भी उपयोग किया है उसका पुनर्निर्माण और पुनर्स्थापन करना चाहिए, और संसाधनों की हमारी बढ़ती जरूरतों और मांग को कम करना चाहिए। अन्यथा जैसा कि गांधी ने कहा था– ''हम सार्वभौमिक स्व के साथ अपनी पहचान बनाने में अपनी वृद्धि को बाधित करेंगे, इस प्रकार सार्वभौमिक भाईचारे के आदर्श को महसूस करने में विफल रहेंगे।''

ईशावास्य उपनिषद के प्रथम श्लोक में ठीक इसी बात पर बल दिया गया है –

'इस क्षणभंगुर दुनिया में जो कुछ भी परिवर्तनशील है, वह सब भगवान द्वारा आच्छादित होना चाहिए। इस त्याग के द्वारा अपनी सहायता करो। किसी के धन का लोभ मत करो।''

यह एक बहुत ही गहरा कथन है, जो हमें बताता है कि यह सारा संसार ईश्वर की आत्मा से भरा हुआ है। यह बहुरूपी संसार निरंतर बदल रहा है और मर रहा है, जो हमें भयभीत करता है। क्योंकि यहां कोई स्थिर आधार नहीं है जिस पर सुरक्षित रूप से हमारे जीवन की संरचना खड़ी की जा सके। यही कारण है कि यह कहता है कि हमें सब कुछ प्रभु से आच्छादित कर लेना चाहिए, और ब्रह्मांड की वास्तविक प्रकृति को समझना चाहिए। अगला कदम है उसका त्याग करना जो वास्तविक या परिवर्तनशील नहीं है। इस दुनिया का आनंद लेने का यही एकमात्र तरीका है। जो हमारा समर्थन करता है वह वह नहीं है जिसे हम त्यागते हैं, बल्कि वह है जो हमारे पास है और जिसका हम आनंद लेते हैं; और यह पद हमें ईश्वर को धारण करके संसार का आनंद लेने के लिए कहता है। त्याग से शुद्ध होने के अलावा कोई सच्चा आनंद नहीं है।

अंत में यह दृश्टान्त हमें बताता है कि 'दूसरे के धन का लालच मत करो।' इसका मतलब यह है कि हमें इस दुनिया में काम करना चाहिए, पैसा कमाना चाहिए, परिवारों का पालन–पोषण करना चाहिए, करियर बनाने में उनकी मदद करनी चाहिए, इत्यादि, लेकिन इनमें से किसी के स्वामित्व का दावा कभी नहीं करना चाहिए। 'मैं' और 'मेरा' सभी संघर्षों की जड़ हैं, जो प्रकृति के शोषण की ओर ले जाते हैं, और अंततः दुख और पीड़ा का कारण बनते हैं। भगवद गीता में भी हमें यही विचार मिलता है –

'स्वाभाविक इच्छा से किया गया कार्य, हे अर्जुन, अनासक्त बुद्धि से किए गए कार्य से कहीं कम है। इस अनासक्त कारण की शरण लो। छोटे दिमाग वाले वे हैं जो स्वार्थी परिणामों से प्रेरित होते हैं।"

हिन्दू धर्म : सभी जीवों का देवत्वारोपण

विचार करने के लिए अगला प्रश्न यह देखना है कि वेदांत दर्शन हिंदू धार्मिक प्रथाओं में कैसे परिलक्षित होता है। भारत के वैदिक ऋषियों ने न केवल मनुष्य और मनुष्य, या मनुष्य और जीवन के अन्य रूपों, मनुष्य और पृथ्वी के बीच, बल्कि पृथ्वी और ब्रह्मांड के अन्य आदिम तत्वों के बीच भी शांति और सद्भाव के लिए प्रार्थना की।

पर्यावरण में एक शांतिपूर्ण ऊर्जा क्षेत्र स्थापित करने के लिए यजुर्वेद में उद्धरित उस मंत्र से तो सभी परिचित होंगे जिसे सभी पवित्र हिंदू संस्कारों और समारोहों के आरंभ में या अंत में पढ़ा जाता है। ओम् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।। ओम् शान्तिः शान्तिः शान्ति।।" इसका अर्थ है कि स्वर्ग, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधियाँ, वृक्ष, देवता, ब्रह्म (परम सत्ता) और समस्त ब्रह्मांड में शांति हो, और वह शांति मुझमें स्थापित हो। ओम् शांति, शांति, शांति। यह श्लोक संपूर्ण सृष्टि में शांति की कामना करता है, जो बाहरी जगत और आंतरिक चेतना दोनों से जुड़ी है।

इस शांति मंत्र से यह स्पष्ट है कि हिंदुओं के लिए पृथ्वी शोषण की वस्तु नहीं है, बल्कि पूजा के लिए एक माँ है। संस्कृत में इसे धरती माता या भू देवी (धरती माता) कहा जाता है। किसी भी प्रयोजन के लिए उपयोग करने से पहले उसकी पूजा (भूमि पूजा) करने की परंपरा आज भी जारी है। हिंदू नदियों और समुद्रों को भी, प्रकृति के आदिम तत्वों के अवतार के रूप में मानते हैं जो उनके संपर्क में आने वाली हर चीज को शुद्ध और जीवंत करते हैं। भारत की सभी नदियों में, गंगा (गंगा माँ या माँ गंगा) को सबसे पवित्र माना जाता है। हिन्दुओं ने पर्वतों को भी देवी–देवताओं का वास मानकर उन्हें विस्मय और श्रद्धा की दृष्टि से देखा है।

हिंदुओं ने पौधों की पूजा कृतज्ञता के साथ की है क्योंकि वे प्रकृति के सौर ऊर्जा के प्रमुख प्रोसेसर हैं, जो अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। ऋषियों ने जिन उपयोगी पौधों का उल्लेख किया है, उनकी एक लंबी सूची है।

ऐसे भी दृष्टान्त मिलते है जिससे यह पता चलता है कि 300 ईसा पूर्व के काल में भारत में पेड़ों को काटने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। मौर्य सम्राटों ने पार्कों या तीर्थ स्थानों में या साधुओं के वन आवासों के लिए छाया प्रदान करने के लिए फल और फूल देने वाले पेड़ों की छोटी शाखाओं या कोमल अंकुरों को भी फाड़ने के लिए गंभीर जुर्माना लगाया। रात में एक पत्ता, फल या फूल तोड़ना हिंदू धर्म में वर्जित है क्योंकि परंपरागत रूप से यह माना जाता है कि पौधे तब आराम की स्थिति में होते हैं।

बहुसंख्यक हिंदुओं के बीच शाकाहारवाद इस सिद्धांत पर आधारित है कि सभी जीवन पवित्र हैं, और इसलिए प्रत्येक जीवित प्रजाति को मनुष्यों के रूप में शांति से रहने का समान अधिकार है, क्योंकि जीवन आखिरकार एक जैविक एकता है। विशेष रूप से गाय को कई कारणों से सबसे पवित्र पशु माना जाता है। अशोक, विशेष रूप से, धर्म या धर्म के कानून की सच्ची भावना में पशु चिकित्सालय खोलने के लिए और भी आगे बढ़ गया।

हिंदू पौराणिक कथाओं, लोककथाओं और साहित्य में पक्षियों और जानवरों के साथ कई हिंदू देवी–देवताओं की आत्मीयता सामने आती है जो उनके वाहनों के रूप में भी काम करते हैं। भगवान विष्णु गरुड़ पर सवार हैं, भगवान शिव अपने सफेद बैल नंदी पर; जबकि देवी सरस्वती का वाहन हंस है, कार्तिकेय मोर पर सवार होते हैं। कुछ सामाजिक और धार्मिक समारोहों में पक्षियों और जानवरों के लिए चिंता भी परिलक्षित होती है।

प्राचीन काल से ही हिंदुओं ने मानसिक वातावरण को बदलने में सुगंध की सूक्ष्म भूमिका को पहचाना है। यही कारण है कि पूजा–पाठ में चंदन जैसी किसी अन्य सुगंधित सामग्री का उपयोग किया जाता है। इसी तरह, विभिन्न प्रकार के फूल हिंदू सामाजिक और धार्मिक समारोहों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सभी वातावरण को पवित्र करते हैं और उपासक को प्रकृति के और नजदीक लाने में सहायक बनाते हैं।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि हिंदू धर्म सभी प्राणियों और संस्थाओं को दिव्य और समान मानता है और पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक भूमिका निभाता है। हिन्दू लोकाचारों में मानव सहित सभी प्राणियों और प्रकृति के बीच अटूट रिश्ता कायम किया गया है। हिन्दू धार्मिक मन्त्र और प्रार्थनाएँ भी प्रकृति के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हैं और उसके साथ सहयोग, शांति और सद्भाव में रहने की इच्छा रखते हैं।

दुर्भाग्य की बात है कि आज समाज का एक प्रबुद्ध वर्ग यह मानकर चलता है कि हम उस संस्कृति में विश्वास नहीं रखते जो दकियानूसी या फिर देवी–देवताओं वाले धर्म को मानती है। ऐसे लोगों से मेरा सवाल है कि प्रत्येक मनुष्य, समुदाय, वर्ग अपना रास्ता चुनने तथा संस्कृति को मानने के लिये स्वतंत्र हैं। मनुष्य नास्तिक हो या आस्तिक, धार्मिक हो या अधार्मिक क्या फरक पड़ता है? लेकिन पर्यावरण हमारे चारों ओर है।

हवा, भोजन, पेड़–पौधे, पानी, जीव–जन्तु का महत्व जितना आस्तिक के लिये है, उतना ही नास्तिक के लिये भी है। प्राकृतिक विपदायें आने से पहले यह नहीं पूछती हैं कि कौन आस्तिक है और कौन नास्तिक। जब प्रदूषण की आँधी आती है, वह सब अपने में समेटकर ले जाती है। कहने का अभिप्राय है कि पर्यावरण का संरक्षण करना हमारा नैतिक दायित्व है क्योंकि संरक्षण करना अपने आपको जीवन देना है। उपभोक्तावाद और भौतिकवाद की दोहरी ताकतें के कारण प्रकृति और पर्यावरण का निरन्तर शोषण बढता गया है। बदले में प्रकृति ने अब ग्लोबल वार्मिंग, समुद्र के स्तर में वृद्धि, बदलते मौसम, ओजोन परत के पतले होने और जीवन–सहायक प्रणालियों के लिए अन्य खतरों के रूप में विद्रोह कर दिया है। समय आ गया है कि हमने फिजूलखर्ची की जगह सादगी, अतिभोग की जगह संयम और चाहत की जगह जरूरत को चुनें। अगर हम चाहते हैं कि एक शांतिपूर्ण समाज और खुशहाल पारस्परिक संबंधों का निर्माण हो सके तो हमें निःस्वार्थता और समर्पित सेवा के मार्ग पर चलना ही होगा।

सन्दर्भ

1. महात्मा गॉधी, माई रिलिजन, नवजीवन प्रकाशन हाउस, अहमदाबाद, पृ0सं0– 156
2. कमप्लीट वर्क ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खण्ड–2 पृ0सं0– 238
3. एरिक फ्राम्म, द आर्ट ऑफ लविंग, मानु ग्राफिक्स पब्लिशर्स, 2013 पृ0सं0– 73
4. लिण्डा जानसन, द कमप्लीट इडियट्स गाइड टू हिन्दूइज्म,पेंग्यूइन ग्रुप, अमेरिका पृ0सं0– 214
5. स्वामी निखिलानंद (अनुवादक), द गोस्पेल ऑफ श्री रामाकृष्णा, रामकृष्ण वेदान्त केन्द्र, न्यूयार्क पृ0सं0– 417, 428, 863
6. डा0 सतीश के0 कपूर, इकोलाजिकल कन्सर्न इन हिन्दूइज्म इन प्रबुद्ध भारत, जनवरी 1998 पृ0सं0– 48.58
7. वेदान्त केसरी मासिक पत्रिका, रामकष्ण मठ, चेन्नई, नवम्बर 2007 पृ0सं0– 16,18
8. श्रीमद्भगवत्गीता : 2.49, 15.13, 15.4

Clay, Culture and Creativity

Tracing the Context and Evolution of Neolithic and Pre-Harappan Terracotta at Mehrgarh

Mr. Hardik Chavda
Temporary Assistant Professor,
Department of Painting, Faculty of Fine Arts,
The Maharaja Sayajirao University of Baroda,
Vadodara, Gujarat

Abstract

Clay has been an integral part of human civilization since prehistoric times, serving as a medium for artistic expression and functional ware. When fired, it transforms into ceramics, a medium widely utilized in the Neolithic period across the Indian subcontinent. This paper explores the evolution of ceramic traditions, emphasizing the interplay between social structures, agricultural developments, and artistic expression. The emergence of votive practices and ritualistic symbolism is examined through clay figurines, particularly depictions of bulls as agricultural deities and female figures representing fertility. Alongside ritual objects, early humans crafted clay vessels for storage and cooking, giving rise to distinct pottery traditions like Quetta pottery. These regional styles not only reflected cultural identity but also influenced one another, leading to hybrid decorative techniques. Through an exploration of materiality, symbolism, and aesthetics, this paper examines how Neolithic ceramics functioned as a record of social evolution and artistic innovation.

Keywords: Pre-Harappan Terracotta, Neolithic ceramics, Indian subcontinent, Material culture, Votive practices, Fertility figurines, Agricultural deities, Functional ware, Pottery traditions

Introduction

The evolution of human creativity is deeply connected to curiosity, emotions, and understanding, and the same applies to the development of clay culture. While the exact origins of working with clay remain uncertain, archaeological evidence provides a timeline for the evolution of ceramic art. Cultural studies further reveal how early humans engaged with their surroundings, shaping their way of life and inspiring creative expression through clay.

Although the precise period when ceramics first emerged is unknown, prehistoric clay figurines, such as the Gravettian female figure from Bulgaria, dated around 25,000 BCE, suggest early human interaction with clay. Researcher Martin Oliva identified fingerprint marks on the figurine, indicating that it may have been crafted by a child (Oliva 2002, 108), possibly in reference to their mother, or with maternal involvement. This connection between creativity and human emotion laid the foundation for clay to evolve from a mere medium into a cultural and artistic tradition.

Archaeological evidence from the Indian subcontinent, dating between 6000 BCE and 3000 BCE, highlights the early use of ceramics during the Neolithic period. Mehrgarh emerged as a major center of ceramic activity and cultural development, along with other sites such as Quetta, Damb Sadat, Mundigak, Nal, and Kulli. These regions indicate an early understanding of clay as a medium for artistic expression and experimentation. As humans became familiar with the properties of clay, they also advanced agricultural practices, leading to the domestication of animals like bulls and cows for farming. This period saw increased social engagement, with clay objects becoming integral to daily life, including pottery, clay toys, and ritual figurines. Notably, the creation of clay female figurines became associated with fertility cults and religious practices, reflecting early symbolic and ritualistic traditions (Alizadeh and Jabari 2017, 1188).

Culture is primarily developed based on geographical location and

Plate 1: Mehrgarh location in the Indian subcontinent

Plate 2: List of Neolithic sites and locations

environmental conditions. A culture's identity is often reflected through artistic expression, both visual and performative. Clay and stone figurines, cave paintings, and dance rituals were not just creative activities but carried ritualistic and social significance. As geographic conditions changed, cultural practices and artistic expressions also evolved, leading to diverse traditions coexisting within the same period. Clay, once a practical material, transformed into a medium of emotional and symbolic significance, supporting its role in spiritual and cultural practices.

As humans understood the properties of clay, they began making vessels for storing food and, later, firing them to increase durability for cooking. Over time, they developed different vessel forms based on function. They also explored decoration techniques, using leaf and bark impressions, pressing natural objects onto the surface, and scratching patterns with sharp tools. Additionally, they applied various clay slips for painting, created brushes for different applications, and used wooden and stone tools to create decorative patterns.

Pottery reflects both technical advancements and creative expression, but the purpose of female figurines remains a mystery. Art history scholars Siyamak Alizadeh and Foroogh Jabari suggest that these figurines may have represented social identities of the time, categorizing them into seven types: Goddess, Mother, Wife, Court Lady, Priestess, Wealthy Woman, and Ordinary Woman (Alizadeh and Jabari 2017, 1178). During the Neolithic period, as humans engaged in farming and animal domestication, they consciously created clay figures of animals, likely symbolizing their role in agriculture.

This paper discusses two major categories of ceramic works: functional pottery and figurines used in ceremonial rituals. It also explores the meaning of the term "ceramic" and its connection to terracotta ware, as well as its innovations and development. Regional influences, cultural practices, and practical needs played a crucial role in the growth of ceramics during the Neolithic period in the Indian subcontinent.

Mehrgarh Culture (7000 BCE to 2500 BCE)

Mehrgarh is a significant archaeological site that offers early evidence of ceramic-related creative activities. Scholars estimate that the Mehrgarh civilization thrived between 7000 BCE and 2500 BCE (Ismail

Plate 3: Humped bull (5000 BCE)

and Khan 2019, 80). The earliest clay figurines, dating to around 6000 BCE, were made using the pinch technique and remained unfired. Additionally, the presence of mudbrick structures at the site suggests the beginnings of settled civilization and architectural advancements.

Around 5000 BCE, low-temperature fired figurines, such as the Humped Bull, were discovered. Notably, no pottery from this period has been found, leading scholars to classify it as a pre-pottery culture. By 4000 BCE, early female figurines appeared, with later phases showing advancements in form and decoration. Some scholars interpret these figurines as symbolic representations of the Mother Goddess, while others suggest they held cultural and ritual significance. (Singh 2008, 130).

Plate 4: Evolution in forms and head decoration

Early female figurines often featured heavy head decorations, possibly representing hairstyles or crowns. Their legs were joined at the bottom, eyes depicted as two holes, and they had prominent breasts and necklaces. The necklaces were made using the applique technique, where clay coils were added after shaping the figure. Legs were separated by a single line, and the overall form conveyed stiffness and solidity. Over time, these figurines became more refined, adding detailed gender characteristics and intricate craftsmanship. Over time, jewelry and ornamentation became more elaborate, reflecting a complex evolution in artistic expression. Observations suggest that by 4000–3500 BCE, these figurines were crafted by skilled artisans. This period also marks the earliest evidence of pottery production in Mehrgarh (Nelson 2007, 76-77).

The prevalence of female figurines in Mehrgarh suggests the significance of women in early society. The diversity in these figurines

indicates their symbolic representation, possibly as mother goddesses, mothers, or wives (Alizadeh and Jabari 2017, 1178). Some scholars propose that women themselves crafted these figurines, using clay as a means of expressing their social identity. As caregivers, they likely passed down clay-working techniques to their children, which may explain the presence of children's fingerprints on some figurines (Oliva 2002, 112). This interaction between social and visual culture played a crucial role in shaping early artistic traditions.

Plate 5: Evolution in standing female figure

The second phase of clay figurine development reflects improved technical skills and greater control over the medium. Artisans used specialized tools to create precise markings, lines, and perforations, enhancing expressiveness and ornamentation. Techniques such as applique, pinching, pellet work, and joining methods became more refined. Figurines from this period often featured a seated posture with exaggerated hips, likely serving as a flat base for stability. Between 4000 and 3500 BCE, figurines evolved from seated to standing postures with more natural proportions. Head decorations became smaller, facial features more defined, and legs were sculpted separately, showing improved jointing techniques. Some figures had bangles, necklaces, and detailed hairstyles made with fine tool marks. Notably, depictions of women holding babies suggest greater attention to gesture and symbolism, reflecting artistic refinement and cultural significance.

Plate 6: Evolution in male figurines

Mehrgarh also provides evidence of male figurines, typically adorned with simple head decorations like turbans or crowns and jewelry such as necklaces and pendants. Some early male figures also depict genitalia. Both

male and, female figurines commonly feature goggle shaped eyes, made with the petal applique technique and prominent beaked noses. Figurine sizes range from 2 to 11 inches, with a ratio of 70% female figures to 30% male and animal figures. By the later phase (4000–3500 BCE), figurine designs became more refined, with smoother jointing techniques for limbs and jewelry, marking an advancement in applique methods.

Between 3500 BCE and 3300 BCE, the people of Mehrgarh likely migrated to the Zhob and Kulli Valleys, marking a shift in ceramic development. The emergence of Zhob culture around 3300 BCE, during the Pre-Harappan period, saw a decline in figurine's details. Headdresses were replaced with simple hairstyles or buns, and dotted stripes were used for neck ornamentation. Figurines were made with a flat base, possibly as a platform. This period marked a cultural transition, with major developments shifting toward the Indus Valley. While figurine designs initially became simpler, the Indus Valley Civilization later reintroduced elaborate head decorations and ornamentation (Ahmad, Rizvi, and Tahir 2019, 57-58).

Pottery

The oldest pottery found in South Asia includes cord-marked and basket-made pottery. The earliest evidence of Neolithic pottery is Kili Gul Mohammad (KGM) ware, discovered in the Kacchi Plain, north of Mehrgarh. This pottery features a gray colored clay core with a red slip, decorated with geometric patterns and animal motifs. Crafted using the coil technique on a slow-turntable wheel, KGM ware has visible fingerprint marks and tool impressions, such as spatula marks. The surface was burnished after painting to enhance its finish (Shudai et al. 2013, 87-88).

Plate 8: KGM ware

Various pottery styles have been found in the Mehrgarh region, all featuring painted decorations, on red-buff ware and gray ware (Dani, Hasan, and Masoon 1992, 240). Potters used

a slow-turn table and coil techniques to create flat-based vessels, often with footed bases. Common forms include bowls and jars, adorned with simple lines, geometric patterns, floral motifs, and depictions of animals, birds, and fish. The painting varies in color schemes, including monochrome, bichrome, and polychrome pottery (Hussain and Siddiqui 2021, 39).

Togue ware Togau ware emerged between 4000 and 3600 BCE, characterized by painted animal and bird motifs arranged in horizontal patterns. Its development is categorized into four stages based on decoration and patterns. The early phase featuring simple line patterns created. Over time, designs evolved to include geometric shapes, stylized bird forms, and depictions of domestic animals like bulls. As the period progressed, animal representations became more refined and detailed. Red-bodied ware was fired at lower temperatures, while gray-bodied ware was fired at higher temperatures. A common floral motif found in these wares is the Pipal leaf (Dani, Hasan, and Masoon 1992, 240). Alongside Togau ware, several other pottery traditions flourished. One notable example is Quetta pottery.

Plate 10: Quetta pottery

Quetta pottery provides early evidence of high-speed wheel work, characterized by smooth finishing, symmetry, and balanced forms. Decoration was applied to both the interior and exterior surfaces, featuring naturalistic animal depictions and geometric motifs. A significant development was the use of varied line patterns, including zigzag, curved, and broken straight lines. The well-fired gray clay body suggests a reduction kiln atmosphere. Some complex forms indicate advanced pottery skills. Scholars suggest that Hakra ware, found in the Hakra River Valley extending into northern India, was contemporaneous with Quetta pottery.

Hakra ware, also known as mud-paste pottery, is distinguished by its thicker walls due to the application of a mud paste layer. After painting, the surface was burnished with stones for a polished finish. Geological and

archaeological evidence suggests that the Ghaggar-Hakra and Saraswati-Ghaggar Rivers once flowed through the same region, leading some scholars to propose that the Rigvedic Sarasvati River and the Hakra River are the same. (Oldham 2016, 450)

Plate 11: Kulli Pottery The final phase of the Mehrgarh culture merged with the Kulli culture between 2800 BCE and 2600 BCE, reflecting a blend of Quetta and Harappan traditions. Scholars suggest that the Kulli culture was shaped by influences from both. This period represents the peak of Mehrgarh's cultural and artistic development, with finely crafted pottery demonstrating the skill of its artisans. Pottery designs symbolized the region's agricultural prosperity, featuring motifs of vegetation, temples, and the sun god. Some pottery also has the maker's mark as a sign. (Shudai et al. 2013, 94-100)

Evidence of organized pottery production structures has been found at various sites. Key sites in Baluchistan, such as Mehrgarh, Mundigak, Quetta, Kulli, and Zhob, played a significant role in shaping early ceramic traditions (Dani, Hasan, and Masoon 1992, 241).

Conclusion

The Neolithic period marks a significant stage in cultural and social development, particularly with the rise of agriculture and animal domestication. The repeated depiction of bull figurines highlights their vital role in farming, while the prevalence of female figures suggests a connection to fertility and ritual practices. These artistic expressions document social and religious activities, reflecting the evolving relationship between humans and nature.

Pottery also evolved from simple handmade forms to decorated and wheel-made vessels, demonstrating advancements in technique and aesthetics. The presence of jewelry motifs on figurines indicates early adornment practices. As societies grew, artistic expression became more refined, integrating symbolism and function.

Mehrgarh's cultural transition laid the foundation for the pre-Harappan period, influencing the artistic and architectural developments seen in the Harappan civilization. This evolution signifies the early stages of human intellectual and aesthetic understanding, shaping the visual and material culture of the Indian subcontinent.

Photo References

Plate 1 Mehrgarh location in Indian subcontinent https://www-jatland-com/w/images/a/a3/Harappa&Mohanjodaro_Map-png

Plate 2 List of Neolithic sites
(Shudai et al. 2013, 75)

Plate 3 Humped bull from Mehrgarh (5000 BCE)
(Joachim Karl Bautze, Early Indian terracotta)

Plate 4,5 Evolution in female forms
https://www-thehistoryhub-com/mehrgarh&facts&pictures-htm

Plate 6 Evolution in male figurines
https://twitter-com/TheAncientWorld/status/1231071164341964801

Plate 7 Cord-mark pottery
(Hazarika 2013, 80)

Plate 8 Early phase of KGM
(Shudai et al. 2013, 146)

Plate 9 Togue ware
(Shudai et al. 2013, 144)

Plate 10 Quetta pottery
(Shudai et al. 2013, 89)

Plate 11 Kulli Pottery
https://store-barakatgallery-com/product/kulli&painted&terracotta&jar

References

- Ahmad, N., Rizvi, A. S., & Tahir, S. (2019). Terracotta female figurines from Mehrgarh and Harappa: Analysis of ornamental similarities. Ancient Punjab, 7, 52–61.
- Alizadeh, S., & Jabari, F. (2017). Motifs of woman which emphasise on the fertility goddesses in Elam civilization (2700–640 BC). Journal of History Culture and Art Research, 6(3), 1176–1189.
- Dani, A. H., & Masoon, V. M. (1992). History of civilizations of Central Asia: The dawn of civilization, earliest times to 700 B.C. (Vol. 1). UNESCO.
- Hazarika, M. (2013). Neolithic-Chalcolithic Cultures of Eastern India (pp. 78–110).

- Hussain, Z., & Siddiqui, K. S. (2021). The case of Togau Ware: An analytical study. Pakistan Heritage, 13(3), 37–47.
- Ismail, A., & Khan, S. (2019). Socio-cultural and public administration of Neolithic Mehrgarh, Baluchistan, Pakistan civilization (7000–2500 BC). International Journal of Business, Economics and Management Works, 6(11), 80–87.
- Jarrige, J. (2008). Mehrgarh Neolithic. Pragdhara, 18(5), 135–154.
- Nelson, S. M. (Ed.). (2007). Worlds of gender: The archaeology of women's lives around the globe. AltaMira Press.
- Oldfather, W. A. (1920). A note on the etymology of the word "ceramic." Journal of the American Ceramic Society, 7(3), 537–542.
- Oldham, R. D. (2016). Manual of the geology of India. Handbooks.
- Oliva, M. (2002). Fingerprint on the Venus of Dolní Věstonice I. Anthropologie, 40(2), 107–113.
- Shudai, H., Konasukawa, A., Kimura, S., & Endo, H. (2013). Report on the survey of the archaeological prehistoric Pakistan stored in Aichi Prefectural Museum. Bulletin of Tsurumi University, 50(3), 81–123.
- Singh, U. (2008). A history of ancient and early medieval India: From the Stone Age to the 12th century. Pearson Education.

Scrolling Minds: Understanding the Mental Health Consequences of Social Media among College Youth

Gauri Pandey
B.A. (Hons) Psychology,
DAV PG College, Varanasi

Abstract

The relationship between social media and mental health has become one of the most discussed issues among young people, especially college students who spend a significant part of their daily lives online. This study explores how different patterns of social media use such as frequency, purpose and emotional engagement shape the psychological well-being of college youth. Drawing on existing research and observations from student experiences, the paper looks at both the positive and negative sides of these platforms. While social media can create spaces for connection, self expression and academic collaboration, it can also lead to anxiety, comparison, burnout and a constant sense of being “on display”. Many students report feeling pressured to maintain a certain image, stay updated or respond instantly, whch quietly adds to mental fatigue. At the same time, online communities can offer validation, support and belonging that studentsmay not always find offline. This study aims to understand this balance how social media can be both comforting and overwhelming and what it ultimately means for the mental well being of college students today. The findings hope to encourage healthier digital habits and more honest conversations around the emotional effects of living online.

Introduction

College life today feels inseparable from social media. Whethr it is checking updates between classes, posting small pieces of our day, or simply scrolling to unwind, most students move through their routines with at least one platform open in the background. What once began asa way to stay connected has quietly grown into an everyday environment where communication, entertainment, self-expression, and even academic work coexist. Because of this constant presence, the emotional impact of social media is no longer something that can be brushed aside as a “technology issue.” It has become a real part of how young people think,interact, and understand themselves.

For many students, social media acts as a bridge connecting them to friends, opportunities, and wider communities they might never encounter in person. Some use these platforms to share their creativity, build networks,

or find support systems lacking in their immediate surroundings. During stressful academic periods, just talking to someone online or sharing a funny meme can be comforting. However, these same platforms have a less acknowledged downside. The pressure to seem "put together," constant comparisons with others, and a subtle fear of missing out can gradually undermine a person's sense of self. Notifications, likes, and comments may seem harmless, but they often create cycles of distraction, restlessness, and emotional overwhelm.

Students, more than any other group, find themselves at the center of this push and pull. They are at an age where identity, stability, and confidence are still developing, making them more sensitive to their online experiences. At the same time, academic expectations, social circles, and personal insecurities all affect how they engage with the digital world. Therefore, discussing social media and mental health is increasingly important. This dialogue aims to understand how students relate to technology rather than assign blame.

This paper explores this relationship in detail, examining how different patterns of social media use impact the emotional and psychological well-being of college students. By looking at both the supportive and stressful aspects of online life, the study aims to clarify how social media shapes the mental landscape of young adults today. Rather than labeling it entirely good or bad, the focus is on understanding the balance: when social media helps, when it harms, and how students can navigate it more mindfully.

Objectives of the Study

The main goal of this study is to understand how social media use influences the mental and emotional experiences of college students. While social media is deeply integrated into daily life, its effects can be complex. This study seeks to break down those effects in a clear and relatable manner. The specific objectives are:

1. To examine general patterns of social media use among college students,
   including the time spent online and the reasons behind their usage.
2. To explore the positive impacts of social media on students' mental well-being, such as connection, support, motivation, and self-expression.
3. To identify the negative psychological effects associated with social media, including anxiety, comparison, distraction, and emotional fatigue.
4. To investigate how different types of engagement (active posting, passive scrolling, academic use, entertainment use, etc.) influence

mental health.

5. To understand students' views on how social media affects their mood, confidence, and overall mental state.
6. To suggest healthier and more mindful social media practices based on the observations made.

Research Questions

To guide the study and keep the discussion focused, the following research questions were developed:

1. How do college students typically use social media on a daily basis?
2. What positive emotional or psychological benefits do they associate with their social media use?
3. What negative feelings or mental health concerns arise from their online experiences?
4. Does the way students engage with social media (active vs. passive use) influence their mental well-being?
5. How do students themselves interpret the role of social media in their mental health?

Literature Review

The relationship between social media and mental health is complex; many studies reveal both helpful and harmful effects. In this section, I will discuss how different studies frame this dual nature and what relevant findings mean for college students today.

1. Positive Effects of Social Media

Many researchers highlight that social media isn't just a source of stress; it can also provide vital emotional and social support for students. For instance, Sarinah Sabar, Natasha Dzulkalnine, and Masrur Mohd Khir argue that platforms like Instagram and Facebook allow young adults to express themselves, connect with peers, and build communities, which can improve well-being and reduce loneliness. During the COVID-19 pandemic, studies found that social media helped maintain a sense of connection during periods of isolation. For college students, social media often serves as a bridge, especially in emotionally tough times. It fosters peer support, facilitates the sharing of struggles, and allows for creative expression.

2. Negative Impacts and Psychological Risks

Conversely, substantial research shows that social media use correlates with anxiety, depression, stress, and poor sleep. A major review found that patterns like passive scrolling, constant emotional investment, and problematic use are strongly linked to poorer mental health outcomes. A

focused study by Yan Jiang et al. indicated that "problematic social media usage" directly correlates with anxiety in university students, with factors like "psychological capital" (personal psychological resources) playing a mediating role, while academic burnout worsens the situation.

Another study published in Frontiers in Psychology pointed out that while social media may seem supportive, it can contribute to feelings of depression, stress, and anxiety over time, especially when students repeatedly check their feeds or feel addicted to their platforms. Additionally, during the COVID-19 pandemic, increased screen time and digital engagement seemed to negatively affect students' mental health, with rising reports of depression, stress, and anxiety.

Social comparison also plays a significant role. When students see idealized versions of others' lives, it often leads to feelings of inadequacy. Cyberbullying, fear of missing out, and the pressure to curate one's online image further add to this mental strain.

3. Moderating and Mediating Factors

The effects of social media aren't simply "good" or "bad." They significantly depend on how someone uses it and their personal context.

- Psychological Capital & Burnout: As shown in the Jiang et al. study, students with greater psychological resources (resilience, optimism, self-efficacy) may buffer some anxiety caused by problematic social media use, while academic burnout can intensify issues.
- Patterns of Engagement: Active engagement (posting, interacting, building) produces different psychological outcomes than passive engagement (scrolling, lurking). Passive users are more likely to feel negative emotions related to comparison and low self-esteem.
- Sleep and Timing: Research indicates that late-night screen time and constant checking disrupt sleep, negatively impacting mental health.
- Feedback and Online Validation: The emotional effects of likes and comments carry significant weight. A recent experimental study found that a lack of positive feedback can make users feel lonely and diminish their self-worth, while more feedback increases feelings of connection.

4. Gaps and Critiques

Despite extensive research, several critical questions and limitations remain:

- Causality: Many studies are cross-sectional, meaning they show correlation but not causation. It's unclear whether social media causes mental health issues or if individuals already experiencing struggles are more inclined to use social media in specific ways.
- Diverse Populations: Much of the research focuses on adolescents or young adults in particular countries or contexts, often excluding college

students globally.

- Measurement Issues: Using self-reported data for social media time and mental health can be inaccurate. Some newer studies attempt to use "digital traces" (actual usage data) to link social media habits with well-being.
- Long-term Effects: Fewer longitudinal studies track how long-term social media habits affect mental health outcomes over time.

Research Methodology

This study employs a straightforward approach to understanding how social media use impacts the mental health of college students. Since the topic involves personal experiences, emotions, and daily digital habits, a descriptive and qualitative methodology was deemed most appropriate.

1. Research Design

The study uses a descriptive research design, which facilitates observing and explaining how students think, feel, and act on social media without manipulating variables. The objective is to understand patterns rather than establish strict cause-and-effect relationships.

2. Sample and Participants

The study primarily focuses on college students aged 17 to 24, an age group that is active on multiple platforms and reports both positive effects and stress linked to online life. A small group of students was chosen for informal discussions and observations from peers, classmates, and general campus culture. Although not statistically large, this sample reflects common experiences shared within a typical college environment.

3. Data Collection Method

Since the study does not conduct a full-scale field survey, data wascollected using:

- Informal interviews and conversations with students about their daily social media habits.
- Observations of usage patterns, including time spent on apps, reasons for logging in, and emotional reactions afterward.
- Secondary data from existing academic articles, previous surveys, and published research on social media and mental health.

This combination balances personal insight with existing research.

4. Tools and Instruments

The main tool for this study is a set of guiding questions created by the researchers, focusing on:

- Frequency and duration of social media use.
- Emotional responses after scrolling.
- Experiences of comparison, anxiety, or stress.

- Positive impacts such as connection, support, or entertainment.

No standardized psychological scales were employed, keeping the study exploratory rather than clinical.

5. Data Analysis

The gathered information is analyzed using thematic analysis, grouping responses and observations into themes such as "positive effects," "negative emotions," "academic impact," and "stress triggers." Existing research supports, contrasts, or deepens these themes, enhancing the study's clarity and credibility.

6. Limitations

Like any exploratory study, this one has limitations:

- The sample size is small and may not represent all college students.
- Some interpretations rely on self-reported experiences, which can be subjective.
- The study cannot claim causation; it only highlights trends and patterns.

Despite these limitations, the methodology is suitable for gaining a grounded, relatable understanding of how everyday social media use influences college students' mental health.

Data Interpretation

The findings of this study suggest that social media plays a complex yet significant role in the emotional lives of college students. Observed patterns from conversations, informal interviews, and existing research reveal that the impact is not one-sided; instead, it depends heavily on how, why, and how often students use these platforms.

One clear trend is that moderate and purposeful use tends to lead to positive outcomes. Students who primarily use social media for communication, creative expression, or academic purposes report feeling more connected and supported. For them, social media acts as an extension of their social circles, helping them stay in touch, share updates, and relieve stress. This aligns with previous research indicating that online communities can reduce loneliness and provide emotional validation

Conversely, excessive or passive use shows noticeably negative effects. Students who often scroll without engaging or who compare themselves to others on social media report feelings of emotional exhaustion, increased anxiety, and drops in self-esteem. Common themes include feelings of being "left out," overwhelmed by others' accomplishments, and pressure to maintain a specific online image. Research strongly supports these patterns, indicating that passive consumption often creates mental strain instead of relief.

Many students recognize these negative effects but continue such habits

out of boredom, routines, or fear of missing out. This finding suggests that the issue is less about the platforms themselves and more about usage patterns. Late-night scrolling, constant notifications, and the need for online validation increase stress and disrupt sleep.

Overall, data interpretation indicates that social media is neither inherently harmful nor entirely beneficial. Its influence lies somewhere in the middle and shifts based on the user's intentions, emotional state, and engagement style. For college students, who often navigate academic pressures and personal changes, this balance is crucial. Healthy, mindful use can offer support and connection, while unregulated and comparison-driven use can lead to anxiety, insecurity, and mental fatigue.

Refrences

- Aliyahputri, S. (2024). *The influence of social media use on adolescent mental health: A literature review*. World Journal of Advanced Research and Reviews, 22(01), 1820–1824.
- Azam, K., Khan, M. K., Ahmed, R., Asghar, R., & Kiyani, A. (2024). The impact of social media use on adolescent depression and anxiety. *Journal of Population Therapeutics and Clinical Pharmacology*.
- Jiang, Y., et al. (2021). Problematic social media usage and anxiety among university students during the COVID-19 pandemic: The mediating role of psychological capital and the moderating role of academic burnout. *Frontiers in Psychology, 12*.
- Keles, B., McCrae, N., & Grealish, A. (2022). The effect of social media on the development of students' affective variables. *Frontiers in Psychology*.
- Khayru, R. K., &Issalillah, F. (2022). *The impact of social media on mental health: An analysis of effects on anxiety, depression, and sleep disorders in adolescents and young adults*. Journal of Social Science Studies, 2(1), 95–102.
- Sabar, S., Dzulkalnine, N., & Mohd Khir, M. (Year unavailable). *The impact of social media on mental health of young adults: A literature review*. Information Management and Business Review.
- Sharma, M. (2025). *A conceptual study on the impact of social media usage on anxiety and depression in college students*. International Journal of Science and Social Science Research, 2(4), 339–345.
- Sivak, E., & Smirnov, I. (2020). *Measuring adolescents' well-being: Correspondence of naive digital traces to survey data*. arXiv.
- Voggenreiter, A., Brandt, S., Putterer, F., Frings, A., & Pfeffer, J. (2023). *The role of likes: How online feedback impacts users' mental health*. arXiv.

लेखकों के लिए दिशा–निर्देश

- शोध पत्रिका का उद्देश्य वर्तमान परिदृश्य में ललित कला, भाषा, मूलभूत विज्ञान, संचार, सामाजिक विज्ञान, मानविकी अध्ययन से संबंधित अन्तर अनुशासनात्मक संबंधी विशयों में नवाचार एवं अनुसंधान को बढ़ावा देना है।
- पत्रिका में प्रकाशन हेतु प्रेषित शोध पत्र मूल होना चाहिए और किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित नहीं होना चाहिए।
- लेखक को शोध पत्र के साथ घोषणा पत्र प्रस्तुत करना होगा, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख करना होगा कि शोध पत्र उनका मौलिक लेखन है और प्रकाशन के लिए अन्य को प्रस्तुत नहीं किया गया है। बेहतर होगा कि शोध पत्र लेखक अपने शोध आलेख के संबंध में प्लेगेरिज्म (Plagiarism) रिपोर्ट संलग्न कर प्रेषित करें।
- लेखकों को अपना आलेख निम्न प्रारूप में प्रस्तुत करना होगा :–
  - » शोध सारांश, प्रमुख शब्द, परिचय, शोध साहित्य की समीक्षा, शोध उद्देश्य, परिकल्पनाएं, शोध प्रविधि तालिकाएं, एवं ग्राफ परिणाम एवं विवेचना निष्कर्ष एवं संदर्भ सूची ।
  - » शोध पत्र एम. एस. वर्ड, पेपर साइज ए–4, फांट कृतिदेव 010/ Times New Roman/ यूनिकोड, फांट साइज 12 मेटर 1.5 मार्जिन स्पेस एवं जस्टीफाईड होना चाहिए और अपने शोध आलेख को ई–मेलः kalasopan@gmail-com प्रेषित करना होगा।
  - » पत्राचार के लिए लेखक को शोध पत्र प्रेषित करने के साथ ही वायोडाटा प्रस्तुत करना होगा। जिसमें शोध पत्र का शीर्षक, लेखक का नाम, पदनाम, संपर्क नम्बर, ईमेल आईडी एवं पोस्टल एड्रेस संबधी जानकारी उपलब्ध करानी होगी।
  - » शोध का सारांश 200–250 शब्दों का होना चाहिए। मेन स्क्रिप्ट में फुटनोट नहीं होना चाहिए। शोध पत्र के अंत में सन्दर्भ APA स्टाईल में दिये जाने चाहिए। सन्दर्भ को क्रमानुसार सूचीबद्व किया जाना चाहिए।
  - » शोध पत्र में तालिकाओं और आंकड़ों को क्रमिक रूप से क्रमांकित

किया जाना चाहिए और प्रत्येक तालिका व आंकडों के अंत में उसके स्रोत का उल्लेख आवश्यक रूप से करना होगा।

» शोध पत्र में उल्लेखित तथ्यात्मक अशुद्धि और कॉपीराइट की जिम्मेदारी शोध लेखक की होगी।

घोषणा पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि.. (लेखक का नाम) शोध पत्र/पुस्तक समीक्षा.. (शोध पत्र का शीर्षक) मेरे द्वारा लिखा गया मौलिक शोध पत्र है। यह शोध पत्र अद्यतन कहीं भी न तो प्रकाशित हुआ है और न ही प्रकाशन हेतु प्रक्रियाधीन है। इसके साथ ही साथ साहित्य चोरी की जाँच की जा चुकी है और यह 10 प्रतिषत से कम है।

लेखक का नाम एवं हस्ताक्षर

Guidelines for Authors

- The aim of the research journal is to promote innovation and research in the currentscenario on topics related to Fine Arts, Social Sciences, Language & Humanities, Basic and advance Sciences.
- The research paper sent for publication in the journal should be original and shouldnot be published in any other journal or not in process of publication.
- The author has to submit the declaration form, along with the research paper, clearlystating that the research paper is his/her original writing and not presented to othersfor publication.
- **Research paper should be in following format :**
    - o Abstract, keywords, objective, introduction, write literature review, hypothesis,research \ methodology, tables and graphs, research and analysis, conclusion,reference list.
    - o M.S. Word, Paper Size A-4, Font Style Times New Roman/ Kritidev/Unicode, Font Size 12, and 1.5 should be margin space and justified and send your research article to e-mail:kalasopan@gmail.com
- For the correspondence, the author will have to submit the re search paper aswell as submit the bio data. In which information related to the title of theresearch paper, author's name, designation, Institution name, contact number,email ID and postal address will have to be provided.
    - o The abstract of the research should be between 200-250 words. The main scriptshould not contain footnotes. Refer ences should be given at the end of theresearch paper in APA style. References should be listed sequentially.
    - o Tables and figures should be numbered sequentially in the

research paper andthe sourc must be mentioned at the end of each table and data.

- o The author will be responsible for the factual error and copyright mentioned in theresearch paper.

Declaration Form

Certified that .... (Name of the author) Research Paper/Book Review .... (title of research paper) is the original research paper written by me. This research paper has neither been published anywhere nor is it under process for publicationtilldaye. Along with this plagiarism has been checked and it is less than 10 percent.

Name and signature of the author

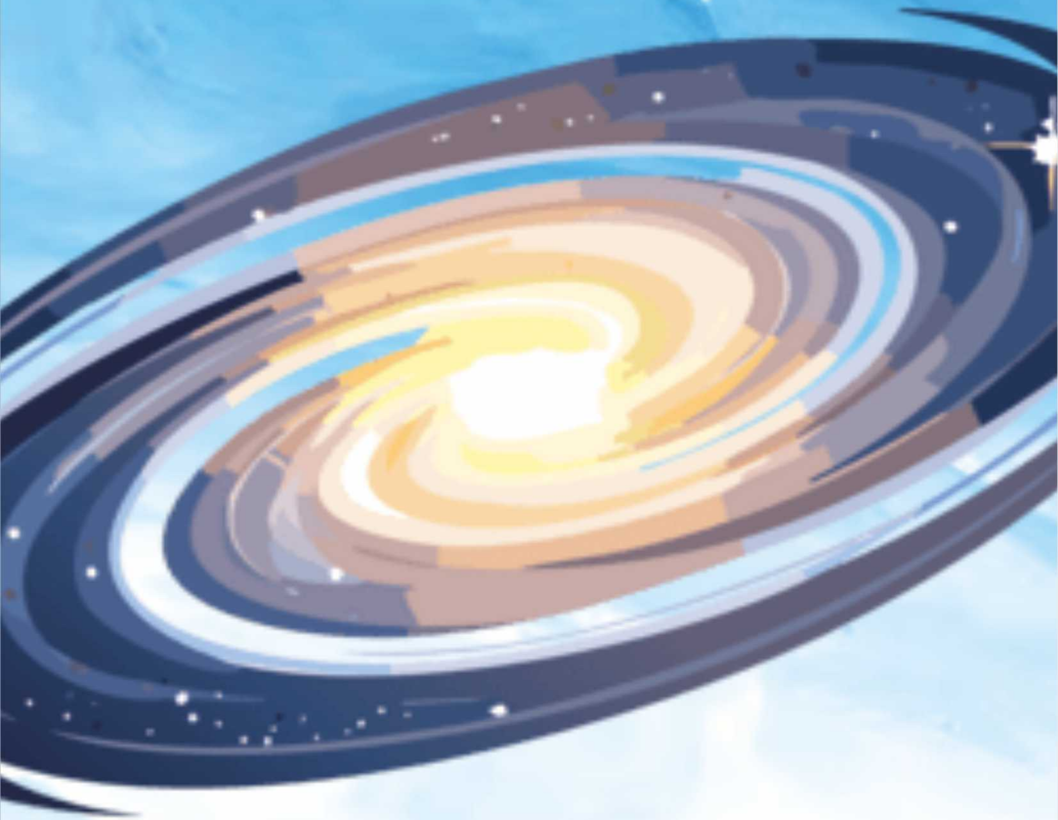

ISSN: 3107-7560

KALA SOPAN (REG.)

9935032832, 8127529762

kalasopan@gmail.com KALA SOPAN

www.kalasopan.com kala sopan @kalasopan